सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 17

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[१५, १६, १७ भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक

वैद्यनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

पावगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८१ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[सप्तदश भाग]

●

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, पूज्य श्री १०५ मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज

●

आगम प्रमाणके लक्षणसे अर्थज्ञानकी मान्यतामें आशङ्का आगम प्रमाणके स्वरूपके वर्णनमें यह प्रसङ्ग आया कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध हुआ करता है और गुणवान पुरुषके द्वारा प्रणीत शब्दोंसे यथार्थ अर्थकी उत्पत्ति होती है और दोषवान वक्ताके वचनोंसे अयथार्थ उत्पन्न रहता है। तो शब्द और अर्थके सम्बन्धमें यहां एक शङ्काकार कहता है कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध बन ही नहीं सकता, फिर आप्तके द्वारा प्रणीत भी शब्द हो तो भी अर्थके ज्ञानको करदे यह बात बन नहीं सकती फिर आगमका लक्षण बताना कि आप्तके वचन आदिकके कारणसे जो अर्थज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं, यह तो कैसे शोभाको प्राप्त हो सकता है? इस तरह शङ्काकार की आशङ्काको दूर करनेके लिए सूत्र कहते हैं :—

सहजयोग्यतासंकेतवशाद्धि शब्दादयः वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः। ३-१००।

शब्दसे अर्थप्रतिपत्ति होनेके लिये शब्द और अर्थके सम्बन्धका विवरण सहज योग्यता और संकेतके वशसे शब्दादिक वस्तुकी प्रतिपत्तिके कारण होते हैं। यहां केवल शब्दको ही वस्तुकी प्रतिपत्तिका कारण नहीं बताया किन्तु हस्तपादादिकके संकेत भी वस्तुके परिज्ञानके कारण होते हैं सहज मायने स्वाभाविक। किसीसे उधार ली हुई नहीं किन्तु खुद द्रव्यमेंसे प्रकट हुई जो योग्यता है वह क्या? शब्द और अर्थमें प्रतिपाद्य प्रतिपादनकी शक्ति होना अर्थात् शब्दमें प्रतिपादक शक्ति है, वह बताता है और अर्थमें प्रतिपाद्य शक्ति है अर्थ समझा जाता है ऐसी शक्तिका होना यह है सहज योग्यता। सो जिस ज्ञान और ज्ञेयमें ज्ञाप्य ज्ञापक शक्ति है ज्ञान तो होता है ज्ञापक और ज्ञेय होता है ज्ञाप्य तो ज्ञान ज्ञेयमें ज्ञाप्य ज्ञापक शक्तिकी तरह शब्दमें प्रतिपादक शक्ति और अर्थमें प्रतिपाद्य होती है। सो वहाँ निमित्त योग्यतासे अतिरिक्त अन्य और कोई सम्बन्ध नहीं है। शब्द और अर्थके बीचमें जो सम्बन्ध है वह प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध है। कार्य कारण अभिव्यञ्जक आदिक सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् शब्द कारण हो। अर्थ कार्य हो या शब्द कारण हो, ऐसा सम्बन्ध नहीं है दोनों भिन्न भिन्न स्थानोंमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपनी सत्ता लिए हुए पृथक स्वतन्त्र पदार्थ हैं। शब्द और अर्थमें प्रतिपाद्य प्रतिपादकत्वका सम्बन्ध है। उस योग्यताके होनेपर संकेत बनता है कि इस शब्दका यह अर्थ है इसका यह अर्थ है गाय शब्दका अर्थ है सासना सहित कोई वस्तु। इससे संकेत उत्पन्न होता है। फिर संकेतके वशसे देशरूपसे शब्दादिक वस्तुके ज्ञान करानेमें कारण होते हैं। शब्द ही वस्तुका ज्ञान करायें प्रतिपादक बने सो इतना ही नहीं किन्तु हाथ अंगुलियोंके संकेत भी वस्तुके ज्ञान करानेमें कारण होते हैं। इस तरह जो शंका की गई थी शब्द और अर्थमें सम्बन्ध नहीं है उसका निराकरण किया है। शब्द और अर्थ में प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध संकेतके कारण बना हैं और यह संकेत सहज योग्यता के कारण बन गया है। यों शब्द वस्तुका ज्ञान करानेका कारण है। जैसे कि हाथ अंगुली आदिकका संकेत वस्तुका ज्ञान करानेका होता है। इसी विषयमें अब दृष्टान्त देते हैं।

यथा मेर्वादयः सन्ति ॥ ३-१०१ ॥

दृष्टान्त पूर्वक शब्द और अर्थके सम्बन्धका प्रतिपादन जैसे मेरू आदिक है—यहाँ अर्थ हुआ मेरू और शब्द हुआ मेरू तो मे रू ये शब्द, इनमें ऐसी योग्यता है, ऐसा संकेत बना है कि मेरू शब्दके कहनेसे बहुत बड़ा विशाल जम्बू द्वीपके बीचमें पड़े हुये मेरू पर्वतका ज्ञान हो जाय। यहाँ शंकाकार कहता है कि यह सहज योग्यता जिससे संकेत बना, यह योग्यता अनित्य है अथवा नित्य है? यदि इस सहज योग्यताको अनित्य मानते हो तो इसमें अनवस्थाका दोष हो जायगा, वह किस तरह कि जिस प्रसिद्ध सम्बन्धके द्वारा यह रूप दिक शब्द अप्रसिद्ध सम्बन्ध वाले घट आदिकका शब्दका सम्बन्ध किया जाता है उसका भी अन्य प्रसिद्ध सम्बन्धसे सम्बन्ध बनेगा। उसका भी अन्यसे बनेगा तो यदि सहज योग्यता अनित्य मानते हो तो सहज योग्यताके मायने है कि जिसका सम्बन्ध प्रसिद्ध है ऐसी योग्यता तो जिस प्रसिद्ध सम्बन्ध वाले संकेतसे अर्थ इस शब्दसे अप्रसिद्ध सम्बन्धका बोध कराते हुयेको देखा जाय, मिट्टीसे बना हुआ घड़ा यह शब्द कहा जाता है उससे इस पदार्थका बोध होता है। इस तरह सम्बन्ध जिसका सिद्ध नहीं है उसका ज्ञान कराया जाता है तो फिर उस प्रसिद्ध सम्बन्धको सम्बन्ध कैसे प्रसिद्ध हुआ? उसके लिए दूसरे सम्बन्ध वाला संकेत होना चाहिये। इस तरह सहज योग्यताको अनित्य माननेपर अनवस्था दोष हो जाता है। उसे यदि नित्य मानते हो नित्यत्वके सम्बन्धपे शब्दोंमें वस्तुके ज्ञानका कारणपना आता है; यह बात तो हम मान ही रहे हैं, अर्थात् शब्द नित्य है। शब्द और अर्थका सम्बन्ध नित्य है। इस तरह मीमांसक लोग यहाँ अपनी शंका रख रहे हैं। समाधानमें कहते हैं कि सम्बन्ध अनित्य होनेपर भी उसमें अर्थज्ञानकी कारणता होती है। जैसे कि हाथ सैन आदिकके सम्बन्ध अनित्य हैं तो भी अर्थकी प्रतिपत्तिके कारण होते हैं। मुहसे कोई नहीं बोलता, केवल हाथसे ही इशारा करके बताता है तो उस बातको लोग समझ जाते हैं। यदि हस्ता-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिकके संकेत अनित्य हैं तो भी पदार्थकी तिपत्तिके कारण होते हैं। ठाथसैन आँख आदिकका चलाना इन सबका जो अपने वाच्य अर्थसे सम्बन्ध है वह नित्य तो नही है वह अनित्य है। जब हाथ सैन आँखका चलाना आदिक ये खुद अनित्य है तो फिर अनित्यके आश्रय रहने वाला सम्बन्ध नित्य कैसे हो सकता है? तो शब्द अनित्य है और शब्द अर्थका सम्बन्ध भी अनित्य है। ऐसा तो नही होता कि भीट तो गिरजाय और भींटके आश्रय रहने वाले चित्र नष्ट न हों। जब आधार ही नष्ट हो गया तो आधेय कहां विराजेगा? तो फिर जब हस्तपाद शब्द संज्ञा ये ही स्वयं अनित्य हैं तो इनमें जो पदार्थका सम्बन्ध बना है वह नित्य कैसे हो सकता है।

अनित्य होनेपर भी शब्दोंमें अर्थप्रतिपत्ति हेतुता—शंकाकार कहता है कि जब शब्द हस्त सैन आदिक अनित्य हैं तो ये अर्थ ज्ञान करानेके कारण न हो सकेंगे। समाधान—यह शंका युक्त नही, इसमें प्रत्यक्ष विरोध है। अर्थात् दिखता ही है कि हम सबके हाथ पैर आदिकके सैनसे अर्थका ज्ञान बराबर हुआ करता है। तो जिस प्रकार हस्त पाद आदिक सैनोंका स्वार्थसे सम्बन्ध है ये अपने अर्थका बोध करा देते हैं इसी प्रकार शब्दार्थके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। शब्दार्थका सम्बन्ध अनाश्रित तो होता नही। किसी न किसीके आश्रयसे तो सम्बन्ध बनता है तो शब्द और अर्थके सम्बन्धका आधार स्वयं शब्द और अर्थ है। जो अनाश्रित होता है उससे सम्बन्धपना सम्भव ही नही। जैसे आकाश अनाश्रित है तो आकाशका किससे सम्बन्ध बताया जाय? तो अनाश्रितमें तो सम्बन्धपना होता नही, सम्बन्ध तो होता है। तो जब सम्बन्धपन आश्रित है तो सम्बन्धके आश्रयके सम्बन्धमें विकल्प किया ही जा सकता है कि सम्बन्धका आश्रय जो पदार्थ है वह नित्य है या अनित्य है? यदि कहो कि नित्य है तो नित्यपने से बताये जाने वाले आश्रयका नाम क्या है? अर्थात् वह नित्य चीज क्या है जो आश्रयसे सम्बन्ध रखती है? क्या वह जाति है अथवा व्यक्ति है? जातिको तो कह नही सकते। यदि जातिमें शब्दार्थपना हो गया तो प्रवृत्ति निवृत्तिका अभाव बन बैठेगा क्योंकि जातिका सम्बन्ध शब्दार्थसे है तो उसका काम जानना हुआ। प्रवृत्ति करना, निवृत्ति करना यह जातिमें अर्थ क्रिया नही होती है। यदि कहो कि वह आश्रय व्यक्ति है जिसको नित्य माना है और शब्दार्थके सम्बन्धका आधार माना है तो व्यक्ति यदि सम्बन्धका आश्रय कहा जाय तो फिर उसमें नित्यपना कैसे रहा? व्यक्ति नित्य नही। यदि शब्दार्थका सम्बन्धका आश्रय व्यक्ति है तो सम्बन्ध नित्य न रहा, और ऐसी प्रतीति भी नही हो रही है। यदि कहो कि वह आश्रित अनित्य है तो सम्बन्धका आश्रयपना भी अनित्य बन गया, क्योंकि जब शब्दादिक अनित्य हैं तो उनका विनाश होनेपर सम्बन्धका भी अपाय हो जाता है। जैसे भीटके नष्ट होनेपर भींटके चित्रोंका भी विनाश हो जाता है इस कारण यह कहना अयुक्त है कि शब्दार्थके सम्बन्ध नित्य हुआ करते हैं।

नित्यानित्यात्मक पदार्थोंमें अर्थक्रियाकी सम्भवता—शब्दार्थके सम्बन्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नित्य क्यों नहीं होते सो देखिये सदृश परिणामसे युक्त पदार्थ हैं और शब्दका शब्दके आश्रय रहने वाले सम्बन्धका एकान्तसे नित्यपना नहीं हो सकता। सर्वथा नित्य वस्तु में क्रमसे और अक्रमसे अर्थक्रिया सम्भव नहीं होती इस कारण सर्वथा नित्य कुछ होता ही नहीं। जो कुछ नहीं होता उसमें नित्य अनित्यको क्या बात चलेगी। दूसरे इसमें अनवस्था दोष बताना भी अयुक्त है। शंकाकारने कहा था कि यदि शब्दार्थका सम्बन्ध नित्य है या अनित्य। अनित्यमें दोष कहे नित्यमें दोष कहे तो सदृश परिणाम युक्त अर्थमें और शब्दमें एकान्तसे अनित्यत्व नहीं होता और अनवस्था दोष देना यह नित्यमें दिया जा सकता है। किस तरह कि जिसका सम्बन्ध प्रकट नहीं ऐसे शब्द का प्रकट सम्बन्ध वाले शब्दके साथ सम्बन्धकी अभिव्यक्ति करना चाहिये तो उस अभिव्यक्त सम्बन्धके सम्बन्धका भी ज्ञान किसी अन्य अभिव्यक्त सम्बन्धसे करना चाहिये। इस तरह अनवस्था दोष तो अभिव्यक्तिवादमें भी हो सकता है। यदि कहो कि किसीके स्वतः ही सम्बन्धकी अभिव्यक्ति होती है तो फिर दूसरेके भी सम्बन्धकी अभिव्यक्ति स्वतः ही मान लीजिये। फिर संकेत क्रिया करना व्यर्थ है। सम्बन्ध विभाग की कल्पना करनेपर कि शब्दका अयं आदिक शब्दसे सम्बन्ध होता है इस प्रकार शब्द विभाग माननेपर फिर सम्बन्धमें नित्यपना माननेकी कल्पना करनेसे क्या लाभ, और कल्पना करोगे ही कि वह नित्य है तो जिसका संकेत ग्रहण नहीं किया गया ऐसे अर्थकी प्रतिपत्ति हो जाना चाहिये। बात यहाँ यह चल रही है कि शब्द नित्य माननेपर शब्दमें प्रतिपादकता भी नहीं बनती, सर्वथा नित्यमें कोई अर्थक्रिया नहीं है तो वह वस्तु ही नहीं है। फिर संकेतकी व्यवस्था नित्य शब्दसे बन नहीं सकती। यदि कहो कि संकेत उसका व्यञ्जक है तो यह भी कहना अयुक्त है। जो नित्य पदार्थ है उसमें व्यंगता नहीं हो सकती अर्थात् पहिले प्रकट नहीं हुआ, अब प्रकट हो जाय, यह बात नहीं बनती। जो भी वस्तु नित्य होती है वह यदि व्यक्त है तो व्यक्त ही है और यदि अव्यक्त है तो वह अव्यक्त ही है। नित्यका तो एक स्वभाव हुआ करता है, जिसमें स्वभावभेद हो वह वस्तु फिर नित्य ही क्या होगी शब्दकी अभिव्यक्ति पक्षमें दिये गए दोषका सम्बन्ध यहाँपर भी बराबर लग जायगा।

संकेतके पुरुषाश्रितत्वकी अनिवार्यता—शब्द व अर्थका जो सम्बन्ध बनता है उस सम्बन्धका बनाने वाला वस्तुतः न शब्द है न अर्थ है। वह तो कोई चेतन आत्मा ही है। पर यह चेतन आत्मा उन शब्दोंमेंसे यह संकेत रखता है कि अमुक शब्दसे बोला जाय तो इस पदार्थका मतलब समझना चाहिये। यों शब्द और अर्थमें संकेत कराया जाता है अथवा चला आ रहा है जिसकी वजहसे शब्दोंके द्वारा अर्थका बोध होता है। संकेत जो हुआ करता है वह चेतनके आश्रयसे हुआ करता है। जो समझता है जिसके बुद्धि है वही तो संकेतकी बात कह सकेगा अब वह पुरुष है अतीन्द्रिय अर्थके ज्ञानसे रहित तो वह वेदमें अन्य प्रकारका भी संकेत कर देगा तो कैसे नहीं मिथ्यात्व लक्षण होनेसे अप्रमाणता आ जायगी? यह निश्चित है कि संकेत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है पुरुषोंके आधीन । जो संज्ञी जीव है, संकेत कर सकता है उसके आधीन है सङ्केतका होना और यह है अतीन्द्रिय अर्थके ज्ञानसे रहित तो फिर वैदिक शब्दोंमें जो सम्बन्ध सकेत बनाया जाता है वह कैसे नही मिथ्या हो जायगा ? कितने ही शब्द अर्थके सम्बन्ध तो उस जीवको परम्परासे ही विशद ज्ञानमें रहा करते है । छोटे छोटे बालक भी पानी, बिस्तर, नींद आदिक अनेक शब्दोंके वाचक शब्दोंको समझते हैं । वे भी उसमें संकेत मान रहे हैं । तो संकेत पुरुषोंके ही आधीन होता है । अब उस संकेतको निरखकर उन शब्दोंको सुनकर जो अर्थके सम्बन्धमें प्रमाणता आती है वह गुणवान वक्ताके कारणसे आती है । जैसे शास्त्रमें प्रमाणीकता है । अब भी लोग शास्त्र स्वाध्यायकी बात आनेपर यह जानना चाहते हैं कि इस शास्त्रको किसने बनाया कब बनाया । यदि गुणवान वक्ता है तो आगममें भी प्रमाणता है । इससे सदृश परिणमन वाले पदार्थमें संकेतके बराबर बनते चले जानमें किसी भी प्रकारका विरोध नही है । शब्द अनित्य हैं । जो शब्द बोले जाते हैं वे बोलनेके बाद नष्ट हो जाते हैं । अब नष्ट शब्द तो अर्थका प्रतिपादन क्या करे ? और शब्द नित्य होता है तो वह भी अर्थका प्रतिपादन क्या करे ? शब्द नित्य है या अनित्य है इस चर्चाकी जरूरत न थी । यह तो अर्थ प्रतिपादनकी बात कही जा रही है । संकेत बननेसे कि इस शब्दका अर्थ यह है इस शब्दसे कहा जाय तो इस वस्तुको लेना । इस तरह शब्दोंमें संकेत होनेसे फिर शब्दों द्वारा व्याख्यान चलता रहता है ।

नित्यत्ववादमें शब्दसंकेतकी एकार्थनियतता व अनेकार्थनियतताकी असिद्धि अब और सुनिये ! यह संकेत नित्य सम्बन्धकी वजहसे एकार्थमें नियत है अथवा अनेकार्थमें नियत है ? जो लोग सम्बन्धको नित्य मानते हैं और उस नित्य सम्बन्धके कारण उनमें संकेत समझते हैं तो जो भी संकेत मिला वह संकेत एकार्थमें नियत है या अनेकार्थमें नियत है ? याने इस संकेतसे किसी एक पदार्थका ही बोध होता है या अनेक पदार्थोंका बोध होता है ? यदि कहो कि एक ही पदार्थका बोध होता है, संकेत एकार्थ नियत है तो वह एकार्थनियतता क्या एक देशसे है या सर्वात्मक रूपसे ? सर्वात्मकरूपसे एकार्थका नियम माननेपर अन्य अर्थमें फिर वेदका परिज्ञान न होगा क्योंकि यहाँ संकेतको सर्वात्मकरूपसे एकार्थनियत माननेकी बात कह रहे हो । और जब उस वेदसे अर्थान्तरमें ज्ञान न होगा तो वेदमें अज्ञानरूपता और अप्रमाणरूपता आ जायगी , कारण कि वह तो कुछ बता ही न सकेगा । यदि कहो कि एकार्थनियत है वह और एक देशसे है तो वह एक देश क्या इष्ट एकार्थमें नियत है या अनिष्ट एकार्थमें नियत है ? यदि कहो कि अनिष्ट एकार्थमें नियत है तो क्यों ही अप्रामाण्य हो गया ? यदि कहो कि इष्ट एकार्थमें नियत है तो वह पुरुषके द्वारा है या स्वभावसे ? यदि कहो कि पुरुषसे है तो फिर अपौरुषेयका समर्थन करनेका प्रयास करना व्यर्थ हो गया । यहां तो देखो —पुरुषोंने अभिमत एकार्थनियत संकेत बन गया । यहां यह पता किया गया कि संकेत कोई सा भी हो एकार्थमें ही नियत हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाता है या अनेक पदार्थोंमें नियत हो जाता है ? यदि कहो कि एकार्थमें नियत होता है तो उसका दोष दिया, अनेकार्थ नियत होता है तो उसका भी दोष दिया जायगा। अन्तमें आखिर यह कहना ही पड़ेगा कि वह नियतपना, वह संकेत, वे सब पौरुषेय हैं, पुरुषका तो रागादिकमें अंधा हो जानेसे निराकरण किया, इसी कारण यदि वेदको एक देश अर्थनियमका प्रतिपादन करता है तो यह तो शब्दकी शक्ति हुई। तो फिर अपौरुषेयत्व कहनेसे लाभ क्या है ? तो यों संकेत एकार्थमें नियत होगया यह बात तो नहीं बनती। अब दूसरी बात यदि मानते हो कि एक संकेत अनेकार्थमें नियमित होता है तो इस तरह विरुद्ध भी अर्थ सम्भव हो जायगा और इस प्रकार इस वेदके आगमसे मिथ्यापन हो जायगा।

शब्दनित्पत्ति व आगमकी प्रमाणताका निर्णय—बात तो स्पष्ट यह है कि तालु आदिक व्यापारसे शब्दकी उत्पत्ति है और ऐसे शब्दकी बहुत बार उत्पत्ति हुई है। तो उन शब्दोंमें अर्थ प्रतिपादकताका संकेत है। इस तरह ये सब वचन रचनामें चलती हैं। उनमें सम्बन्धका संकेत चलता है। तो वह संकेत सदृशताके कारणसे उस प्रकारके अनेकार्थसे जान लेता है लेकिन सम्बन्ध मान लिया जाय तो उसमें इस विकल्पसे घटित करनेकी समीचीनता नहीं होती। नित्य सम्बन्ध संकेत यदि अनेकार्थमें रहता है तो फिर विरुद्ध अर्थ भी सम्भव हो सकता। इससे गुणवान पुरुषके द्वारा प्रणीत शब्दोंमें प्रमाणता मानो। दोषवान वक्ता द्वारा प्रणीत शब्दोंमें अप्रमाणता मानो। दोषवान वक्ता द्वारा प्रणीत शब्दोंमें अप्रमाणता मान लीजिये। अनाश्रित सम्बन्ध मान लिया, उनका फिर सम्बन्ध मानना और इस तरह कितनी ही बातोंको घटाकर जो एकबार अपने भावोंमें आये उसको सिद्ध करनेका कठिन प्रयत्न करना यह तो विवेक नहीं है। सीधा जिसे सब कोई जानता है कि शब्दमें प्रतिपादकता है और अर्थमें प्रतिपाद्यता है, यही सम्बन्ध मानना चाहिए और इस तरह शब्दार्थका सम्बन्ध होनेसे फिर लोक व्यवहार चलता है, उपदेश परम्परा चलती है। इससे शब्द पौरुषेय हैं और उन शब्दों द्वारा रचित आगम पुराण ये भी पौरुषेय हैं। पौरुषेय होनेसे अप्रमाणता नहीं किन्तु गुणवान वक्ता न होनेसे अप्रमाणता आती है। तब आगमका प्रमाण यह निःसन्देह सिद्ध होता है कि जो आप्तके वचन आदिकके कारणसे अर्थज्ञान होता है वह आगम है।

इन्द्रियगोचर व अतीन्द्रिय शब्दार्थसम्बन्धका अभाव—अच्छा अब यह बतलावो कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध क्या इन्द्रियका विषयभूत है अथवा अतीन्द्रिय है याने इन्द्रियका विषयभूत नहीं है, या अनुमान द्वारा गम्य है ? यदि इन्द्रियका विषयभूत मानते हो तो यह बात तो स्पष्ट घटित नहीं होती क्योंकि अपनी ही इंद्रियमें अपने ही रूपसे सम्बन्ध प्रतिभास नहीं होता। तो कर्ण इन्द्रियसे शब्दार्थ सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि वाच्य वाचककी समर्थता अतीन्द्रिय हुआ करती है, वे इंद्रियों द्वारा कैसे जाने जा सकते हैं ? यदि कहो कि शब्द अर्थका सम्बन्ध अतीन्द्रिय है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जब ज्ञा... है तो वह सम्बन्ध उत्पत्तिका कारण कैसे हो सकता है, क्योंकि जो ज्ञापक ... करता है, प्रतिबोधन करने वाला हुआ करता है वह निश्चयकी अपेक्षा रखता ... अर्थात् पहिले ज्ञान हो जाय तब तो वह ... वस्तुके परिज्ञानका अंग बन सकता ... ज्ञापक यहाँ मान रहे हैं सम्बन्ध और सम्बन्ध हो रहा है अतीन्द्रिय तब ... का ज्ञान कैसे हो सकता है? यदि कहो कि शब्द और अर्थकी सदृशता होनेसे ... अर्थका ज्ञापक करने वाला हो जायगा तो इतने सन्निधिमात्रसे यदि अर्थ का ज्ञा... लेते हो तो इसमें यह भी दोष हो सकता कि जैसे मीमांसकको ये वेद अपना ... समझा दें इसी प्रकार सौगत आदिकको भी समझा देवे। इससे सम्बन्ध अतीन्द्रि... फिर वस्तुका प्रतिपादन करे यह बात युक्त नहीं हो सकती।

...ार्थ सम्बन्धके अनुमानगम्यत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि शब्दार्थ का सम... अनुमान गम्य है सो भी बात युक्त नहीं बनती क्योंकि उसका कोई साधन नहीं है। ...नुमानमें साधनसे साध्यका विज्ञान होता है। तो शब्दार्थके सम्बन्धमें यदि अनुमा... सिद्ध कर रहे हो तो उसमें साधन बताओ जिससे कि साध्य सिद्ध हो। उसका ...न क्या ज्ञान है? अथवा पदार्थ है? या शब्द है? ये तीन विकल्प किये गए है। ...र्थकी सिद्धि करने वाले साधनके सम्बन्धमें उनमेंसे ज्ञान तो लिंग हो नहीं सक... क्योंकि जब सम्बन्ध ही सिद्ध नहीं है तो सम्बन्धका कार्य या ज्ञान, अर्थात् ...का सम्बन्ध सिद्ध हो तब उससे ज्ञान उत्पन्न होता है। सो सम्बन्ध सिद्ध करनेके ... ज्ञानको तुम साधन कह रहे हो वह ज्ञान अभी सिद्ध है नहीं, इस कारण ज्ञानरूप... तो सम्बन्धको सिद्ध कर नहीं सकता। अर्थके सम्बन्धको सिद्ध करनेके लिये ... बनाया जाता है सो नहीं बन सकता, क्योंकि बतलावो फिर कि सम्बन्ध ... अर्थ इन दोनोंके बीच क्या तादात्म्य सम्बन्ध है। यहाँ अनुमानमें सम्बन्ध तो साध्य ... और अर्थको साधन बना रहे तो साध्य और साधनमें या तो तादात्म्य सम्बन्ध ... तदुत्पत्ति कोई सम्बन्ध तो हो जिससे साधन साध्यको सिद्ध करदे। तो ... और अर्थमें तादात्म्य सम्बन्ध तो है नहीं क्योंकि फिर सम्बन्ध अनित्य बन ... क्योंकि अर्थ अनित्य है और अर्थका सम्बन्धके साथ तादात्म्य हो गया तो ... भी अनित्य हो जायगा। तब फिर कहीं सम्बन्ध होगा, कहीं न होगा ... फिर अर्थ ज्ञान नहीं बन सकता, इसी प्रकार सम्बन्ध और अर्थके साथ तदुत्पत्ति ... भी नहीं है क्योंकि सम्बन्धसे अर्थकी उत्पत्ति मानी नहीं गयी तो इस ... और सम्बन्धके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं बन सकता और असम्बद्ध अर्थ ... कैसे बता सकता है? यदि सम्बन्ध और अर्थमें तादात्म्य तदुत्पत्ति आदिक ... सम्बन्ध न होनेपर अर्थका बोध करावे तो इसमें अनेक दोष आ सकते हैं। जो वस्तु नहीं है—जैसे गधेके सींग, आकाशके फूल आदिक। इनके विषयमें भी सम्बन्धका ज्ञान करा दे और यदि असम्बद्ध अर्थके द्वारा सम्बन्धका ज्ञापन हो जाय तो सम्बन्धरहित शब्द ही क्यों न सीधा अर्थका ज्ञान करा दे? फिर शब्द और अर्थमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नित्य सम्बन्धको सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता ? अर्थ भी लिंग नही है। सिद्ध करनेके लिये अनुमान बनाया जाय और उसमें अर्थका साधन बनाया जाय तो यों अर्थ की साधकता घटित नही हो सकती। इस प्रकार शब्दार्थके सम्बन्धसे सिद्ध करनेके लिये शब्द भी साधक नही बन सकता है। इस विषयमें भी अर्थरूप विकल्पमें दोष दिये गये थे वे सभी दोष यहां भी घटित होते हैं। वहाँ पूछा जा सकता है कि सम्बन्ध का और शब्दका क्या तादात्म्य सम्बन्ध है या तदुत्पत्ति सम्बन्ध है ? दोनों प्रकारके सम्बन्ध तो हैं नही और असम्बद्ध होकर यदि शब्द शब्दार्थके सम्बन्धको सिद्ध करदे तो सम्बन्ध रहित ही शब्द सीधा क्यों नही अर्थका प्रतिबोधन कर देगा ? इस कारण नित्य सम्बन्ध तो सिद्ध होता नही जिस सम्बन्धके द्वारा वेदको अर्थका प्रतिपादक माना जाय।

अन्तिम चर्चापूर्वक शब्दार्थसम्बन्धका निर्णय यदि कहो कि यह वेद स्वभावसे ही अर्थका प्रतिपादक होता है तो यह बात घटित नही होती क्योंकि मेरा यह अर्थ है, मेरा यह अर्थ है इस तरह तो वेद बतला नही सकता, क्योंकि शब्द तो ऐसा बोलता नही है कि मेरा यह अर्थ नही है। जो कोई कल्पना करने वाला है कि इस शब्दका यह अर्थ है वह कल्पना करने वाला है पुरुष और पुरुष है रागादिकसे सहित। इस कारण वेदमें प्रमाणता नही आ सकती है। यदि आगममें प्रमाणता मानना है तो सब बातें सीधी माननी चाहियें कि चाहे लौकिक शब्द हो चाहे वैदिक शब्द हो, शब्द मात्र सहज योग्यताके संकेतके वशसे अर्थका प्रतिपादन करता है, क्योंकि शब्दार्थका प्रतिपादन करदे, शब्दके द्वारा हम किसी वस्तुको जान जायें ऐसा जाननेमें अन्य कोई प्रकार सम्भव नहीं है। जब शब्द ही योग्यता और संकेतके वशसे अर्थका प्रतिपादक होता है तो अब यह मानना चाहिये कि उस शब्दका रचने वाला यदि कोई गुणवान पुरुष है, यदि सर्वज्ञदेवके चरणोंके सन्निधानमें वे समस्त शब्द रचनायें चली हैं तो प्रमाणभूत हैं। यदि उस शब्द रचनाका वक्ता असर्वज्ञ है, सदोष है, रागादिमान है तो उस शब्दमें प्रमाणता नही आ सकती। इस प्रसगमें यह निर्णय रखना है कि शब्द अर्थका प्रतिपादक होता है और वह सहज योग्यता और अपने संकेतके वशसे अर्थका प्रतिपादन करनेमें साधन बनता है।

शब्दके अन्यापोहमात्राभिधायकत्वकी आशङ्का अब यहाँ अपोहवादी शंकाकार शंका करता है कि शब्दोंके अर्थकी प्रतिपादकता सम्भव नही है क्योंकि जो ही शब्द रचना है वह पदार्थोंके होनेपर भी और न होनेपर भी देखी गई है तथा भविष्यकालमें और अतीत कालमें अर्थ नहीं है तब भी शब्द देखा गया है और जिसके अभावमें जो कुछ देखा जाता है उसका उससे सम्बन्ध नही कहा जा सकता। जैसे घोड़ेके अभावमें भी गाय देखी जा रही है तो इसमें यह तो निर्णय हो गया ना कि घोड़ा गायसे प्रतिबद्ध नही है। इसी प्रकार शब्द अर्थके सद्भाव होनेपर भी देखा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है। इससे शब्दका और अर्थके साथ सम्बन्ध नही माना जा सकता इस तरह जब पदार्थोंके अभावमें भी देखा गया और शब्दार्थके प्रतिपादक नही बन सकें, तो शब्द किसका प्रतिपादन करता है ? मात्र अन्यापोहका अर्थ है कि अन्यका परिहार करदे । जैसे गो शब्द कहा तो गो मायने गाय। गायसे अन्य हुआ घोड़ा भैंसा आदिक । गाय शब्द कहनेसे घोड़ा भैंसा आदिकका बोध नही होता। तो क्षणिकवादी जो अपोहवाद मानते हैं वे शंका कर रहे हैं कि शब्द सीधा अर्थका ज्ञान नही कराता किन्तु अन्यापोह का ज्ञान कराता है इसलिये शब्दमें अर्थ प्रतिपादकता नही है।

अन्योपोहवादके निराकरणका उपक्रम अब इसका समाधान करते हैं कि शब्द अर्थका प्रतिपादक है। कोई शब्द अर्थवान है कोई शब्द अर्थ रहित है। अर्थात् पदार्थके सद्भाव होनेपर भी शब्द हुआ करते हैं वह तो अर्थवान शब्द है और पदार्थके न होनेपर भी शब्द उत्पन्न होता है यह अर्थरहित शब्द है । सो अर्थवान शब्दसे अर्थरहित शब्द भिन्न हुआ करता है। किसी अन्यमें व्यभिचार आनेपर अन्य मे व्यभिचार नही लगाया जाता। यदि अर्थरहित शब्दमें व्यभिचार किया गया तो अर्थवान शब्दमें व्यभिचार नही लगाया जा सकता। अन्यथा अर्थात् किसी अन्यमें व्यभिचार आनेपर अन्यमें व्यभिचार लगा दिया जाय तो गोपाल घटिकामें रहने वाले धूमका अग्निके साथ व्यभिचार देखा गया तो गोपाल घटिकामें धूमसे अग्निका व्यभिचार देखा जानेपर पर्वत आदिकमें धूमका अग्निसे व्यभिचार कर दिया जायगा पर होता तो नही। यदि अन्यके व्यभिचार होनेपर अन्यका व्यभिचार मानते हो तो पर्वत आदिक प्रदेशोंमें रहने वाला धूम और अग्निमें भी व्यभिचार बन बैठेगा। इस तरह फिर कोई कार्यहेतु ही न बन सकेगा क्योंकि जो भी कार्य हेतु देगा उसमें यह कह दिया जायगा कि एक जगह व्यभिचार कहीं आ जाता है तो इसमें भी व्यभिचार आ जायगा। और इससे अतिरिक्त अन्यका व्यभिचार आनेपर अन्यका व्यभिचार मान लिया जाय तो सकल शून्य हो जायगा। फिर कुछ भी सिद्ध न किया जा सकेगा, जैसे कि स्वप्नादिकमें जो ज्ञान उत्पन्न होते हैं उनमें तो कहीं विभ्रम पाया जाता है ना। अर्थात् स्वप्नमें पर्वत, शेर, मंदिर आदिक अनेक चीजोंका ज्ञान तो हो रहा है पर वहाँ वे चीजें पायी नही जा रही तो स्वप्न आदिकके ज्ञान जैसे विभ्रमरूप होते हैं उनका अर्थके साथ व्यभिचार पाया जाता है तो समस्त ज्ञानोंमें अर्थ व्यभिचारका प्रसंग आ जायगा। क्योंकि अब तो इस हठपर उतर आये कि किसी भी जगह व्यभिचार होनेपर अन्य जगह व्यभिचार हो जाता है। यदि कहो कि बड़े यत्नसे परीक्षा किए कार्य कार्यकारणका उल्लंघन नहीं करता अर्थात् अन्यके व्यभिचार होनेपर अन्यके व्यभिचारका दोष बताना, जो यह कह दिया है कि फिर तो कोई कार्य हेतु ही सिद्ध नही हो सकता। तो कार्य हेतु यों सिद्ध हो सकता है कि परीक्षा करके जिस में हमने निर्दोष कार्यपना जान लिया है वह कार्य कारणका उल्लंघन नही कर सकता। अर्थात् उस कार्यहेतुसे कारण साध्यको सिद्धि हो जायगी। तो उत्तर देते हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यह बात तो शब्दमें भी कही जा सकती है । शब्दमें भी यह परीक्षा यत्नसे कर लीजिये कि यह शब्द अर्थवत्ताका स्वभाव नही रखता याने यह शब्द अर्थवान है यह शब्द अर्थवान नही है, इस तरहसे परीक्षा करके जिस शब्दको समझ लिया है वह पदार्थका व्यभिचार नही करता, अर्थात् उस शब्दके द्वारा उस पदार्थका बोध होता ही है । और फिर जिस विधिसे तुम अन्यापोह कहते हो, जिस अगोव्यावृत्तिको गो शब्दका अर्थ वाच्य कहते हो याने गो शब्दका गाय नही किन्तु अगाय व्यावृत्ति है तो इस तरह शब्दोंमें अन्यापोह मात्रका कहना अर्थात् शब्द केवल अन्यका अपोह करता है, किसी वस्तुका प्रतिपादन नही करता है । यह बात तो केवल तुम्हारा विश्वास भरको है । वस्तुतः ऐसा नहा है । लोग तो उस शब्दको सुनकर उसका अर्थ अन्यापोह नही लगाया करते ।

अन्यापोहमात्रमें प्रतीतिका विरोध और प्रवृत्तिनिवृत्तिका लोप— अन्यापोह मात्र कहनेमें प्रतीतिका भी विरोध है । किसीने गो शब्द कहा तो उस शब्द से विधिरूप गायका ही ज्ञान बनता है । यदि शब्द अन्यका निषेध करे तो शब्द तो अन्यका निषेध करने मात्रमें ही चरितार्थ हो गया अर्थात् शब्दका तो इतना ही मात्र प्रयोजन बना कि उस शब्दने अन्यका निषेध कर दिया, तब शब्दसे फिर सास्नादिमान गोका बोध न होना चाहिये याने शब्द यदि अन्यापोह मात्रको कहता है जैसे कि गो शब्दने जो गाय नही है उन समस्त अर्थोंका प्रतिषेध किया, इतना ही मात्र यदि अर्थ है तो गो शब्दके बोलनेसे अन्यापोहका बोध हो गया, इसमें ही गाय शब्द बालने का अर्थ समाप्त हो गया । फिर गो शब्दसे उस गाय अर्थकी प्रतीति न होना चाहिए और फिर गाय शब्द बोलकर अर्थके प्रति व्यवहार न करना चाहिये । जैसे किसीने कहा कि गायका दुग्ध लावो तो गायका अर्थ तो अन्यापोह मात्र रह गया । ... वाली गायका अर्थ तो नही बनता तब उसमें दुग्धादिक अर्थ कहां नहीं ... फिर तो गो अर्थको जाननेके लिए गो विषयक गो बुद्धिको उ... फिर अन्य शब्दोंकी खोज करनी चाहिये क्योंकि गो शब्दसे तो ... अन्यापोह जाना गया तो जिससे अर्थका हो ... उस अर्थका बोध ... कोई शब्द बोलना चाहिये । यदि कहो कि एक ही शब्द ... दोनों उत्पन्न हो जाती है अर्थात् गो शब्दके बोलनेसे अन्यापोह भी ... गो अर्थ भी जाना गया इस कारणसे गो अर्थको जाननेके लिए ... ढूंढनेकी जरूरत नहीं रहती । उत्तर में कहते है कि यह बात यु... शब्द जो या तो विधिकारी है या निषेधकारी है याने उस शब्द ... किसीका अस्तित्व जाना जा रहा है या किसीका नास्तित्व जाना जा ... तो ऐसी एक ध्वनि एक साथ इन दोनों विज्ञानोंको उत्पन्न करदे यह बात नहीं बन सकती अर्थात् एक ही शब्द विधिको सिद्ध करे और निषेधको भी सिद्ध करे यह बात नहीं पाई जा सकती । जैसे कि गाय शब्द अगोव्यावृत्तिका विषय अर्थात् जो गौ नही है ऐसे अन्य अनेक विषयोंका परिहार भी बताये और गौ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थको भी बताये यह बात नहीं बन सकती, क्योंकि विधिज्ञान और निषेधज्ञान इन दोनोंमें परस्पर विरोध है। विधि और निषेध ये दोनों परस्पर विरुद्ध बातें हैं। तो उनका ज्ञान एक शब्दसे सम्भव नहीं हो सकता।

शब्दका वाच्य अन्यापोहमात्र माननेपर विडम्बना—यदि शब्दके कहनेसे अगोशब्द व्यावृत्ति ही मुख्य रूपसे जाना जाता है [illegible] सुननेके बाद सबसे पहिले सुनने वालेको अगो ऐसा ज्ञान होना [illegible] अगोव्यावृत्त अर्थ होता है इसी प्रकार गो शब्दसे अ[illegible] [illegible] गोशब्दसे सुननेसे ही पहिले अन्तर हो जायगा। किन्तु [illegible] हो जायगा। तो बोध होना चाहिए अगो पर ऐसा तो देखा [illegible] सुनने वालेको सर्वप्रथम न आ सकता। गो बुद्धिका [illegible] [illegible] ऐसी बुद्धि कभी भी [illegible] बोला जाता है उस शब्दका [illegible] सारे जगतमें विदित है कि जो शब्द [illegible] अर्थका सीधा बोध होता है ऐसा [illegible] शब्द सुननेके बाद पहिले उन शब्दोंकी निवृत्तिमें [illegible] कभी गो का ज्ञान करे ऐसा किसीके बोध नहीं होता [illegible] अर्थको जान लेता है और फिर इस तरह अगोव्यावृत्ति [illegible] है तो अनन्त अगोपोहपनेका ज्ञान ही कैसे हो सकता है? और [illegible] नहीं है उसकी व्यावृत्ति कैसेकी जा सकती है? अन्यापोहवादी गो शब्द [illegible] जो गौ नहीं वे ऐसे अश्व, भैंस, बकरी आदिक विषयोंकी निवृत्ति मानते हैं तो ऐसे अगौ तो हैं अनन्त उनका पहिले परिज्ञान करें और फिर उनका निषेध करे इस तरह उस अन्यापोहका समझना ही बड़ा कठिन हो जायगा। इससे सीधे और स्पष्ट रूपसे यह मानना चाहिए कि गो शब्द बोल करके विधिरूप गाय अर्थका बोध होता है, उसमें अन्यापोहका ज्ञान हो पहिले, ऐसा नहीं है। और इस तरह ही व्यवहार बन सकता है। लौकिक जन जो लोक व्यवहार करते है और शब्दको बोलकर शीघ्र व्यवहार करते जाते हैं यह व्यवहार तभी बन सकता है जब कि शब्दसे अर्थका सीधा बोध यह मान लिया जाय। यदि लोक व्यवहारमें भी शब्दसे अन्यापोह लगाया जा रहा है तो शब्द बोलनेके अनन्तर तुरन्त ही शब्द द्वारा वाच्य अर्थके प्रति व्यवहार न बन सकेगा। उस शब्दसे अन्यापोह जाना जायगा, बादमें फिर अर्थकी प्रतीति करेंगे। अर्थवान भी करेंगे शब्द यदि अन्यापोह मात्रका बोधक है तो उससे किसी भी अर्थका प्रतिबोध नहीं हो सकता, तब फिर व्यवहार भी और धर्म ज्ञान भी सब कुछ असिद्ध हो जायेगा।

अन्यापोहको परमार्थ सद्रूप माननेपर सिद्धसाधनता—क्षणिकवाद सिद्धान्तमें शब्दका अर्थ वस्तुरूप विधिरूप नहीं माना गया है किन्तु अन्यके अपोहरूप माना गया है। जैसे गो शब्द कहा तो उससे गायका ज्ञान नहीं होता किन्तु जो गाय नहीं हैं ऐसी सारी वस्तुओंका परि[illegible] उसका ज्ञान होता है। तो क्षणिकवादी पूछ

http://sahjanandvarnishastra.org/

जा रहा है कि अपोहरूप सामान्य जो कि शब्दका वाच्य माना गया है वह पर्युदास रूप है या प्रसज्यप्रतिषेधरूप है ? गो शब्दके कहनेसे गाय नहीं जानी जाती है, किन्तु जो गाय नहीं है जैसे घोड़ा, बकरी, भैंस आदिकका परिहार है यह जाना जाता है इसे कहते हैं अपोह अर्थात् शब्दके द्वारा अपोह जाना जाता है, चीज नहीं जानी जाती है। सो उस सम्बन्धमें पूछा है कि अपोह पर्युदासरूप है क्या ? अर्थात् जो गाय नहीं हैं उनका अभाव अर्थात् गाय। क्या इस तरह अपोहका विधिरूप अभाव है या प्रसज्यरूप अर्थात् गाय नहीं, इस तरह केवल निषेधमात्र यह अपोहका अर्थ है ? यदि कहो कि अपोहका पर्युदास अर्थ है तो यह तो हम भी मानते हैं। अगोपोह जो गाय नहीं है उनका अभाव अर्थात् गाय, तो ऐसा तो सभी लोग मानते हैं जो ही अपोहका परिहार है और उसे कहते हो आप अपोह सामान्य, वही गो शब्दसे कहा गया है और हम भी गो सामान्य गोशब्दके द्वारा वाच्य है ऐसा कहते हैं। आप गोको अगोपोह कहकर बोपर ही आये और हम गो शब्द कहकर सीधे गायको वाच्य मानते हैं मगर वाच्य माने गए दोनों जगह विधिरूप। अभाव अन्य भावरूप होता है यह व्यवस्थित बात है।

अन्यापोह कल्पनाके संभवित आधारकी किसी झलककी संभावना— यहां एक बात चिन्तनमें लाना है कि आखिर क्षणिकवादियोंको यह धुन क्यों समाई कि गाय शब्द कहकर गायका बोध नहीं होता किन्तु अगाय व्यावृत्तिका बोध होता है, जो गाय नहीं हैं उनका अभाव है, इस तरहसे वे गोशब्दका वाच्य मानते हैं तो ऐसी ही क्लिष्ट कल्पनायें कर कैसे लीं ? यद्यपि दार्शनिकोंकी कुछ बातें मिथ्या भी होती हैं लेकिन कोई न कोई स्रोत हो, कोई थोड़ा बहुत तथ्य हो तो उसपरसे बढ़ बढ़कर विपरीतता आ जाय, किन्तु कुछ भी मूलमें तथ्य न हो तो एकदम विपरीत कल्पनायें कैसे की जा सकती हैं ? जैसे चारवाक सिद्धान्तने माना कि जीव भौतिक है, पृथ्वी जल, अग्नि, वायुका जो समूह हो उसीको चेतन कहा जाता है तो प्रत्यक्षसे ऐसा ही दीखता, चेतन प्रत्यक्षसे दीखता नहीं तो कुछ स्रोत तो मिला तब तो ऐसी उन्हें विपरीत कल्पनायें करनेका साहस बना ! जो लोग जगतको ईश्वरकृत मानते हैं तो बात यह है कि जितने भी आत्मा हैं वे सब प्रभु हैं और उनके खुदका परिणमन भी उनके द्वारा हुआ और लोकमें जो अनेक काय हैं पुद्गल हैं जो दिखने वाले शरीर हैं, उनका भी परिणमन उस चेतनके सम्बन्धसे हुआ और चेतन ही ईश्वर है सो कुछ स्रोत तो था जिससे बढ़कर वे ईश्वर कर्तृत्व तक आ गए। तो कोई न कोई बात तथ्यमें थोड़ी सी हुआ करती है। चाहे वह अन्य रूपसे हो, उसपर ही लोग बढ़कर विपरीत कल्पनामें पहुँचा करते हैं। तो यहां शब्द अन्यापोहवाचक है ऐसा कहनेमें तथ्य क्या था मूलमें ? तो तथ्य यह था कि पदार्थ स्वरूप चतुष्टयसे अस्तिरूप हैं और पर चतुष्टय से नास्तिरूप हैं, ऐसी विधिनिषेधात्मकता प्रत्येक पदार्थमें है। अब वस्तुके इन दो स्वरूपोंमें कि अपने चतुष्टयसे अस्तिरूप रहना और परके चतुष्टयसे नास्तिरूप रहना, इनमें से पर चतुष्टयसे नास्तिरूप रहना इसको मुख्य कर लिया है और मुख्यतासे अन्यापोह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की बात मानी गई है। खैर अभी इस प्रसङ्गमें अन्यापोहको पर्युदासरूप मान रहे हैं तो थोड़ी देर तो हुई मगर आये हैं परमार्थस्वरूपपर ही। अगोपोह अर्थात् जो गाय नहीं है उसका अभाव माना है परके अभावरूप, तो इसका अर्थ भी गाय ही हुआ। पर्युदासमें अभावको भावरूप माना जाता है। जो गाय नहीं है उनके अभावका अपोह याने गायका सद्भाव।

क्षणिकवादियोंके अश्वादिनिवृत्तिस्वभाव भावकी मीमांसामें स्वलक्षणात्मकताका निराकरण – और भी बात सुनो। इस पर्युदासरूप अगोपोहके प्रसंगमें अगोपोहका अर्थ है—जो गाय नहीं हैं उन सबकी निवृत्ति अर्थात् अश्वादिक की निवृत्ति। तो अश्वादिककी निवृत्तिका स्वभावरूप भाव आपके सिद्धान्तमें क्या हुआ? जब यहां अगोपोहको पर्युदासरूप मान रहे हो तो अश्व आदिककी निवृत्ति है किसी भावरूप तो वह भावरूप तो वह भावरूप क्या चीज है? वह भाव असाधारण गौका स्वलक्षण स्वरूप तो हो नहीं सकता क्योंकि स्वलक्षणता समस्त विकल्पों के अगोचर है। इस विकल्पका यह भाव है कि क्षणिकवाद सिद्धान्तमें वस्तुका स्वरूप केवल स्वल क्षणात्मक माना है, इससे अधिक कुछ नहीं। जैसा आत्माका स्वरूप क्या, आत्माका वह स्वलक्षण जो क्षणिक हो, निरंश हो, निरन्वय रूप हो, पदार्थका स्वरूप क्षणिकवादमें क्षणिक माना है। एक क्षण ही पदार्थ ठहरता है दूसरी क्षण पदार्थ नहीं रहता। इस प्रकार पदार्थका स्वरूप निरंश माना है। पदार्थमें अंश नहीं हुआ करते। अर्थात् एक प्रदेशी जैसा पदार्थ होता है पदार्थका स्वरूप निरन्वय माना है। पदार्थ अगले समयमें यदि नहीं है तो ऐसा क्षणिक निरंश निरन्वय गौ तो अश्वादिक निवृत्ति रूप भावमें आता नहीं क्योंकि ऐसा असाधारण भाव किसी भी विकल्पके गोचर नहीं होता अश्वादिक निवृत्तिरूप भावसे क्या जाना गया इस सम्बन्धमें चर्चा चल रही है। थोड़े समयको इस प्रसंगमें ३ बातें समझ लीजिये—एक तो नाना प्रकारकी गायें—चितकबरी, काली, लाल खंडी मुडी आदिक और एक गाय जाति और एक क्षणिक निरंश निरन्वय गौ स्वलक्षण इन तीनमेंसे पहिली दो बातें तो समझमें आगयी होंगी। चितकबरी लाल पीली आदिक गायें, वे सब ठीक हैं ना? और दूसरी बात कही गौ जाति उन चितकबरी गायोंमें समान रूपसे धर्म देखा जाय तो उससे गौ जाति समझी जाती है। अब यह तीसरी बात स्वलक्षण है। है गौस्वलक्षण किन्तु क्षणिक है, निरंश है, निरन्वय है। तो यों समझिये कि वस्तुको टाला है कुछ का कार तो इसमेंसे अश्वादिक निवृत्ति रूप भावसे यह स्वलक्षण तो जाना नहीं गया।

क्षणिकवादियोंके अश्वादिनिवृत्तिस्वभाव भावकी मीमांसामें व्यक्तिविशेषात्मकताका निराकरण—यदि कहो कि सावलेय आदिक व्यक्ति जाने गए हैं गो शब्दसे जाना अश्वादिक निवृत्ति और अश्वादिक निवृत्ति है यहाँ भावस्वरूप। वह भाव है चितकबरी लाल पीली आदिक गायें अनेक। तो कहते कि तुम्हारे सिद्धान्तसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फिर असामान्यका प्रसंग होता है अर्थात् अब वह व्यक्ति [illegible] गो गाय शब्द यदि चितकबरी आदिक किसी व्यक्तिका वाचक है तो [illegible] अन्वय नही रहा। तब गो शब्द सामान्य विषयक न रह सका। गो शब्द [illegible] क्षणिकवादमें अगोपोह गाय नही। गाय शब्द बोलकर गायका ज्ञा[illegible] क्षणिकवाद में, किन्तु जो गाय नही हैं उन सबका निषेध ज्ञात होता है [illegible] हैं अगोपोह। [illegible] गो नही है सो अगोपोह। अगोपोह मायने अश्वादिका निषेध। उस सम्बधमें पूछा कि अभाव पर्युदासरूप है या प्रसज्य प्रतिषेधरूप? अश्वादिक नही हैं इसका अर्थ [illegible] हां रूप है या ना रूप है है। हां रूप के पक्षकी यह चर्चा चल रही है कि अश्वादिककी निवृत्ति [illegible] भावरूप है तो वह भाव स्वलक्षण तो रहा नही। यदि चितकबरी आदिक [illegible] विशेष रूप कहते हो तो गो शब्दका चितकबरी गायमें अन्वय नही, विशेषकी जितनी गायें हों जो गो शब्द हैं वे सब [illegible] अर्थका ही वाचक हैं ऐसा अन्वय नही मिलता इस कारण से अब यह मानना चाहिये अगोपोहका अर्थ कि जितनी सजातीय गायें हैं चितकबरी मुंडी लाल पीली आदिक उन समस्त गाय पिण्डोंमें जो प्रत्येकमें रहती है तन्निमित्तक जो गाय हो उसमें सदृशता धर्मको देखकर जो यह बुद्धि रहती कि ये सब गायें हैं तो ऐसी गायें सामान्य गो शब्द कही गई हैं न कि अगोपोह कहा गया है और फिर अगोपोह कहकर पर्युदासरूप भावात्मक उसका अर्थ लगाते हो तो हमारे और आपके कहनेमें नाम मात्रका फर्क रहा। तात्पर्यमें फर्क न रहा। हम गो शब्द कहकर सीधा गायका ज्ञान करते है और तुम गो शब्द कहकर अगोपोह रूपसे गायका ज्ञान करते हो तो अगोपोहका अर्थ यदि पर्युदास मानते हो तो वह युक्त है। इसमें कोई असिद्धिकी बात नही है।

अगोपोहका प्रसज्यप्रतिषेध अर्थ लेनेपर लोकव्यवहारका लोप--यदि अगोपोहका अर्थ प्रसज्य प्रतिषेध मात्र मानते हो अर्थात् अश्व आदिक नही। इतना ही अर्थ गाय शब्दका है। चार टांग वाली सासना जिसके गलेमें लटकती ऐसी कोई वस्तु गो शब्दसे जानी गई है ऐसी बात तुम नही मानते किन्तु जो गाय नही है, अश्व भैंस आदिक उनकी निवृत्ति इतना ही गो शब्दसे तुम अर्थ समझते हो तो इसका भाव यह हुआ कि शब्दोंका फिर कोई वस्तु वाच्य ही न रहा। शब्द ही व्यर्थ हो गए। जब जो शब्द बोला जाता है उस शब्दसे कोई भावात्मक चीज ज्ञात नही होती। किन्तु प्रसज्य प्रतिषेध ही रहता है। तो फिर शब्दोंका वाच्य कोई वस्तु ही नहीं रहा। चौकी बोला तो चौकीके मायने जो चौकी नही है ऐसी भींट, छत, पहाड़ आदिका अभाव। चीज तो कुछ नही आयी और जब शब्दोंका वाच्य कोई वस्तु न रही तो इसमें न प्रवृत्ति कुछ हो सकेगी और न निवृत्ति कुछ हो सकेगी। दूसरी बात यह है कि तुच्छरूप अभाव तो क्षणिकवादने माना भी नही है, इससे अगोपोहका अर्थ प्रसज्य प्रतिषेध भी नही बनता। एक गो शब्द बोलकर सीधा गाय अर्थ न माननेपर कितनी विकट कल्पना की जानी पड़ रही है। सीधा ही साफ स्पष्ट जनसाधारणकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समझमें आने वाली बात मान लीजिये तो इसमें कोई आपत्ति नही रहती।

चर्चाके आधारभूत मूल प्रकरणका स्मरण—यह प्रकरण मूलमें चल रहा है आगम प्रमाणपर आगमका लक्षण किया था कि सर्वज्ञदेवके वचन आदिकके कारण उत्पन्न हुआ जो अर्थज्ञान है सो आगम है। इस आगमके लक्षणपर पहिले तो यह शंका की गई थी कि आप्त कोई होता ही नही है। उसका निराकरण किया गया, फिर यह शंका उत्पन्न की कि आप्तकी वजहसे आगमकी प्रमाणता नही होती किंतु आगम अपौरुषेय होता है इस कारण प्रमाणता होती है इसका निराकरण किया। आगमकी अपौरुषेयता सिद्ध करनेके लिए शब्दोंकी नित्यता मानना आवश्यक है। शब्द नित्य हो तो वह शब्द अपौरुषेय कहलाये। आगममें शब्द ही तो लिखे गए हैं। यदि ये शब्द अनित्य ठहरते हैं तो आगम फिर नित्य तो न ठहरेगा, इस कारण शब्दको नित्य सिद्ध करनेकी शंकाकारको आवश्यकता पड़ी। तब शब्द नित्यत्वका निराकरण किया। फिर यह शंका हुई कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध कैसे है? जिस कारण शब्द अर्थका वाचक बन जाय तो शब्द और अर्थमें सम्बन्धकी सिद्धिकी। शब्द वाचक है और पदार्थ वाच्य है, इस प्रसंगपर क्षणिकवादी यह शंका रख रहे हैं कि शब्द तो वाचक है पर शब्द पदार्थका वाचक नही किन्तु अपोहका वाचक है। जैसे गो शब्द बोला तो उससे गाय अर्थका ज्ञान न होगा, किन्तु जो गाय नही है ऐसे सारे पदार्थोंका निषेध ज्ञात होगा।

अन्यापोहको तुच्छाभाव माननेपर समस्त अपोहोंकी पर्यायवाचिता होनेसे सकलशून्यतापत्ति—अब यहां शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे जो विभिन्न सामान्य शब्द हैं, गो, अश्व, महिष, अज आदिक तथा चितकबरी मुंडी आदिक जो विशेष शब्द है तो ये दोनों प्रकारके शब्द अर्थात् सामान्य शब्द जिनसे अनेकका बोध होता है, जो जातिरूप है, और विशेष शब्द जिससे किसी व्यक्तिका ही बोध होता है ये दोनों प्रकारके शब्द आपके अभिप्रायसे पर्याय वाचक ठहरेंगे। क्योंकि पदार्थमें तो अब भेद रहा ही नही। जैसे वृक्ष कहो, पादप कहो, तरु कहो, इन सबका अर्थ एक ही हुआ ना तो ये पर्यायवाची शब्द कहलाये। तो अन्यापोह सिद्धान्त मानने वालोंके यहां चाहे गो शब्द कहो, चाहे अश्व कहो, चाहे चितकबरी गाय कहो चाहे मुंडी कहो, सारे शब्द पर्यायवाची कहलायेंगे, क्योंकि शब्दका वाच्य तो है अन्यापोह। अन्यका परिहार और अन्यापोह है तुच्छाभावरूप याने किसी पदार्थको वह नही कहता जैसे अश्वादि निवृत्ति अर्थात् अश्वादिका अभाव। अरे अश्वादिकका अभाव है तो कुछ तो होगा। सो कुछ नही मानते, किन्तु एक तुच्छाभाव ही मानते, प्रसज्य प्रतिषेध ही मानते तो दुनियाके जितने भी शब्द हैं। चाहे जाति वाचक शब्द हों अथवा व्यक्ति वाचक, सभी शब्दोंका अर्थ एक रहा—तुच्छाभाव। तो सारे शब्द पर्यायवाची हो गए। तुच्छाभावमें भेद क्या? भेद तो वस्तुमें ही प्रतीत होगा। जो विधि रूप हों उस हीमें एकत्व नानात्व आदिक सारी बातें लगा सकते हो। तुच्छाभावमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

याने कुछ नहीं, केवल निषेध । उसमें कोई भेद ही नहीं किया जा सकता । तो क्या आपत्ति आयी अन्यापोह शब्दका वाच्य माननेपर कि जितने भी शब्द हैं चाहे जाति-वाचक हों या व्यक्तिवाचक हों, सभी शब्दोंका अर्थ जब तुच्छाभाव है और कुछ नहीं है तो सब शब्द पर्यायवाची कहलाने लगे फिर न प्रवृत्ति हो सकती न निवृत्ति हो सकती न अर्थक्रिया कर सकते । किसीने कहा कि गायका दूध लावो तो अर्थ क्या हुवा ? तुच्छाभावका तुच्छाभाव लावो । गाय शब्द मायने तुच्छाभाव अगोपोह प्रसज्य प्रतिषेध और दूध मायने भी अदुग्धनिवृत्ति तो चीज क्या रही ? कुछ व्यवहार भी न चल सकेगा । तो जितने अपोह हैं अर्थात् जितने शब्द बोले जाते हैं उतने अन्यापोह हैं, गोशब्द अर्थात् अनश्वापोह । तो जितने भी अपोह है, उन सबमें अब भेद तो कुछ रहा नहीं, क्योंकि समस्त अपोहोंका अर्थ है तुच्छाभाव । फिर वस्तु तो कोई वाच्य न रही, सारे शब्द अनर्थक रहे ।

अपोहोंमें भेद माननेपर वस्तुरूपताकी सिद्धि और सीधे व्यवहारका अनुरोध —यदि उन अपोहोंमें भेद मानोगे कि अनश्वापोह और बात है अगोपोह और बात है तो इससे फिर अभावकी वस्तुरूपता सिद्ध हो गयी । अब यह अभाव तुच्छाभावरूप न रहा, क्योंकि जो जो परस्परमें भिन्न होते हैं वे वस्तुरूप ही हुआ करते हैं । जैसे कि क्षणिकवादियोंके माने गए स्वलक्षण यद्यपि स्वलक्षणमें कोई वस्तु ज्ञात नहीं होती लेकिन कहने मात्रको तो है, तो वह परस्परमें भेदको प्राप्त है तो विधिरूप है, तो इसी प्रकार यदि ये सारे अन्यापोह परस्परमें भेदको प्राप्त हैं तो ये सब भी विधिरूप होने चाहियें । यहां तक जो वर्णन किया गया है उसमें मूल भाव यह है कि क्षणिकवादमें शब्दको अर्थका वाचक नहीं माना है किन्तु अपोहका वाचक माना है । गो शब्द बोलकर गौका बोध नहीं होता किन्तु अगापोहका बोध होता है । सो प्रथम तो यह प्रतीति विरुद्ध बात है । जो लोग भी गाय शब्द सुनते हैं वे घोड़ा आदिक नहीं है ऐसा ख्याल तो नहीं करते किन्तु सीधा गायको ही जानते है और फिर यदि अन्यापोह ही वाच्य है तो पहिले गौ शब्द बोला तो उसका ही अर्थ अगो शब्दापोह हो गया । तो सर्वप्रथम अगौ शब्द उसके सुननेमें आना चाहिये । फिर यह पूछा गया कि अश्वादिककी निवृत्ति कहनेपर अभावरूप चीजका अर्थ हुआ या केवल अभावमात्र । यदि भावरूप चीज है तब कोई विवाद नहीं है । शङ्काकार और उत्तरकार दोनोंका एक ही परिणाम हो गया । यदि अभावमात्र है, तुच्छाभावरूप है तब फिर जितने भी अपोह हैं गौशब्दस बोलकर अगोपोह आया, अश्व शब्द बोलकर अनश्वापोह आया । तो जितने भी अपोह हैं उन सबका एक ही मतलब हुआ । तुच्छाभाव तो वे सब पर्यायवाची शब्द हो गए । तब कोई वस्तु ही न रही, कोई प्रवृत्ति निवृत्ति इसकी नहीं बन सकती । तो तुच्छाभावरूप अन्यापोहको माननेपर समस्त व्यवहारका लोप होता है और ज्ञानका भी लोप होता है, इस कारण शब्द अन्यापोहका वाचक नहीं, किन्तु शब्द सीधा अर्थका वाचक होता है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्बन्धिभेदसे भी अपोहोंमें भेदकी असिद्धि किसी भी वस्तुका वाच्य वस्तुभूत अर्थ न माननेपर और अन्यापोह माननेपर चूँकि वह अन्यापोह तुच्छाभावरूप है अतः उन अपोहोंमें कोई भेद नहीं रह सकता। जब भेद नहीं रहा तो आप जितने भी शब्द बोलेंगे सबके अपोह पर्यायवाची कहलायेंगे तब फिर किसी भी अर्थका किसी भी प्रकारसे बोध नहीं हो सकता और कदाचित् उन अन्यापोहोंमें भेद मानोगे तो अभाव वस्तुरूप बन जायगा, सो ठीक है फिर सर्वथा अन्यापोहकी बात तो न रही। अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि अपोहोंमें वस्तुभूत भेद तो नहीं है किन्तु जिसका अपोह किया जा रहा है, जिसका हटाव बताया जा रहा है उन सम्बन्धियोंके भेदसे अपोहोंमें भेद हो जाता है। जैसे गो शब्द कहा तो उसका अर्थ हुआ अगोपोह। मायने अश्वादिनिवृत्ति। तो यहाँ अपोह्य हुये अश्वादिक उनमें भेद पाया जाता है। अतएव अपोहोंमें भेद हो जायगा। उत्तर देते हैं कि इस तरह अपोह्यरूप सम्बन्धीके भेदसे अपोहोंमें भेद नहीं किया जा सकता। अन्यथा प्रमेय अभिधेय आदिक शब्दोंकी प्रवृत्ति ही न हो सकेगी। जैसे कि अभिधेय शब्द कहा। अभिधेय मायने कहे जाने योग्य तो अभिधेयका अर्थ क्या हुआ क्षणिकवादमें ? – अनभिधेयापोह, अर्थात् जो अभिधेय नहीं है उसकी व्यावृत्ति तो जो अपोह्य है मायने अनभिधेय है वह तो कुछ है ही नहीं। तब फिर उसमें भेद डाला ही नहीं जा सकता है। जैसे कि गो शब्दका अर्थ अश्व आदिककी निवृत्ति कहा तो अश्व तो कोई चीज है वहाँ तो तुम कुछ कुछ बोलने लगे, पर अभिधेय शब्द कहा जाय तो उसका अर्थ है अनभिधेयापोह। तो अनभिधेय तो अवस्तु है, उसमें सम्बन्धी भेदसे भेद क्या बनेगा ? अथवा जैसे प्रमेय शब्द कहा तो प्रमेय शब्दका क्या अर्थ हुआ क्षणिकवादमें ? अप्रमेयापोह। जो प्रमेय नहीं है उसकी व्यावृत्ति तो जो प्रमेय नहीं है ऐसा तो कुछ है ही नहीं, फिर सम्बन्धी भेद तो नहीं फिर सम्बन्धी भेद तो नहीं बना। तो यह कहना कि अपोह्य स्वरूप सम्बन्धी भेदसे अपोहोंमें भेद होता है यह कहना गलत रहा। क्योंकि अप्रमेय आदिकका जो अपोह किया है प्रमेय शब्द बोलकर सो प्रमेय आदिक शब्दोंमें जो कुछ हटाये जाने रूपमें कल्पित किया है याने अप्रमेयको हटाया जानेरूपसे कल्पित किया है तो वह सब हटाये जानेके आकारसे जो कुछ भी आलम्बित हो वह प्रमेय आदिक स्वभावरूप ही तो हुआ, याने अप्रमेयका व्यवच्छेद इसका विषय कौन बना ? प्रमेय। जब तक विषयभूत चीज न जान लेवे तब तक उसका हटाव भी नहीं किया जा सकता। जिसका विषय ही कुछ नहीं है उसका हटाव कैसे किया जा सकता है ?

सम्बन्धिभेदोंमें अपोह भेदकताकी असिद्धि– एक तो सम्बन्धीभेदसे अपोहोंमें भेद होता नहीं और फिर सम्बन्धी भेद अपोहोंका भेदक बन ही नहीं सकता, क्योंकि यदि सम्बन्धी भेद अपोहोंका भेदक बन जाय तो जैसे बहुत सी गायें खड़ी हैं चितकबरी, लाल, काली, पीली आदिक अनेक गो व्यक्तियोंमें एक अगोपोहका अभाव हो जायगा, क्योंकि देखो ना कि उन गायोंमें भी तो भेद है ना। जो चितकबरी है सो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्याम नहीं, जो लाल है सो चितकबरी नहीं, तो उन व्यक्तियोंमें भी तो भेद पड़ता है। तो सम्बन्धी भेद जब भेदक बन गया मान लिया तो शाबलेय आदिक अनेक व्यक्तियों में भी भेद आ जायगा अर्थात् गाय गाय जातियोंमें भी अपोह एक न रह सका। भला जिसका अंतरङ्ग शाबलेय आदिक व्यक्ति विशेष भेद करने वाला न रह सका उसके बहिरङ्ग अश्व आदिक भेद करने वाले हो जायें यह तो केवल एक कहने भरका साहस किया जा रहा है। और सम्बन्धीके भेदसे तो वस्तुमें भी भेद नहीं पड़ता है। अवस्तुकी तो बात ही क्या कहें, किसी चीजका सम्बन्ध हो जाय तो उस सम्बन्धसे युक्तको कहते हैं सम्बन्धी। तो सम्बन्धीके भेदसे वस्तुमें भेद न हो जायगा। जैसे एक देवदत्त नामका पुरुष है। वह एक साथ अथवा क्रमसे बारीब रोसे अनेक शृङ्गार वस्त्र आभूषण आदिकसे सम्बन्धित हो रहा है अर्थात् कभी कोई कपड़ा पहिन लिया, कभी कुछ पहिन लिया, कभी कोई आभूषण पहिना, इस तरहसे उन आभूषण आदिक से सम्बन्धित हो रहा है फिर भी देवदत्तमें कोई भेद पड़ता है क्या? पुरुष तो वहीका वही है ना? तो सम्बन्धीके भेदसे वस्तुमें भी भेद नहीं होता। अवस्तुमें भेदकी कल्पना करना तो व्यर्थ है यहां पर शंकाकारको यह पड़ गयी है कि जितने शब्द बोले जाते हैं उतने ही हैं अन्यापोह। और, अन्यापोहका अर्थ किया जाय केवल तुच्छाभाव, मायने अन्यका निषेध भर। वस्तु न मानी जाय तो अन्यका निषेध भर ये तो सब एक समान हुए। गो कहा तो अगोपोह मायने अगोपोह, मायने अनश्वका निषेध। तो ये सब अभाव जब तुच्छरूप हो सके तो फिर भेद कैसे बन सका। और, यों भेद न बन सका तो कुछ संकेत न रह सकेंगे। तो क्षणिकवादी जिस किसी प्रकार अन्यापोहमें भेद सिद्ध करना चाह रहा पर वस्तुभूत पदार्थ न माननेपर भेद नहीं सिद्ध हो सकता।

सम्बन्धीकी असिद्धिमें सम्बन्धिभेदसे अपोहभेदकी असिद्धि—अब कहते हैं कि मान लो सम्बन्धी भेदसे भेद भी हो गया तो भी पहिले सम्बन्धि सिद्ध तो कर लो। वास्तविक सामान्य न माननेपर अर्थात् अनेक वस्तुओंके सदृश धर्म न मानने पर आप जिसका अपोह करना चाहते है वह सम्बन्धी भी सिद्ध नहीं हो सकता। फिर किसका भेद सिद्ध करोगे? जिस सम्बन्धीके भेदसे तुम अपोहोंमें भेद सिद्ध करना चाहते हो वह सम्बन्धी तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक वास्तविक सामान्य अर्थात् उस जाति वाले पदार्थोंमें सदृश धर्मकी बात न मानोगे। अब उस ही का खुलासा सुनो। गो आदिक पदार्थोंमें यदि सदृशरूप सामान्य प्रसिद्ध हो तब तो अगो का अर्थात् अश्वादिकके अपोहका आश्रयपना इन पदार्थोंमें सिद्ध बनेगा। यदि सदृश धर्म न माना जाय तो अपोहका आश्रयभूत सम्बन्धी सिद्ध नहीं किया जा सकता। देखो गो शब्द कहकर अगोपोह अर्थ ले रहे हो तो प्रथम तो वस्तुभूत गो ही नहीं पहिचान पाया और फिर जिसकी निवृत्ति करना चाहते ऐसे अश्वादिकको भी न जान पाया। तो सदृश धर्म न माननेपर जो भी विवक्षित अपोहका आश्रयभूत सम्बन्धी हो उसकी सिद्धि नहीं होती इस कारणसे जो अपोहका विषयपना अश्वादिकमें चाहते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनको सदृश धर्म अवश्य मानना चाहिये, और वही सामान्य वस्तुभेद कहलायेगा, फिर अपोहकी कल्पना व्यर्थ है। जैसे ही शब्द बोले वैसे ही उसका वाच्यभूत अर्थ विदित हो जाता है उसमें यह कौन सोचता कि अन्य शब्दका अभाव है यह कहा है शब्दमें। तो सदृश धर्म माने बिना वाच्य वाचक सम्बन्ध नहीं बन सकता और सदृश धर्म माने बिना अन्यापोहकी कल्पनाका नहीं जा सकती।

सारूप्यके न माननेपर अगोहकी अव्यवस्था – यदि सदृश धर्म न होनेपर भी चितकबरी लाल पीली आदिक गायोंमें अगोपोहकी कल्पना करते हो तो फिर अगोपोह कहकर जैसे चितकबरी गायको समझना चाहिये तो यों अगोपोह कहकर घोड़ा क्यों नहीं समझमें आ जाता. क्योंकि सदृश धर्म तुम मानते ही नहीं। जैसे चितकबरी गायको देखकर कोई कहे अगोपोह तो चितकबरीका ही तो सम्बन्ध रहा अगोपोह कहनेमें। तो चितकबरीसे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उनका अपोह हो जायगा। तब फिर अन्य गायोंका ग्रहण न हो सका —अगोपोह कहनेसे अथवा जब सामान्य नहीं मानते, सदृश धर्म नहीं मानते तो गो शब्द बोलकर अगोपोह कहकर गायसे भिन्न पदार्थोंका व्यवच्छेद कैसे कर दिया जाय क्योंकि सादृश्य तुम मान ही नहीं रहे तब फिर जैसी गाय तैसा घोड़ा, इस कारण शब्दका वाच्य अगोपोह नहीं।

स्वलक्षणवत् अगोपोहमें भी संकेतका अभाव –क्षणिकवादी लोग यह कहते हैं कि जो वस्तुका असली स्वरूप है उस स्वरूपका न कोई उपचार कर सकता, न उसकी चर्चा कर सकता, न उसमें कोई संकेत बन सकता, क्योंकि वस्तु स्वरूप है स्वलक्षणात्मक। एक क्षण रहने वाला निरन्वय निरंश वस्तुका स्वरूप होता है। अब ऐसी वस्तुका संकेत बन सकता है क्या ? जितने समझे जाने वाले ज्ञान हैं, संकेत वाले ज्ञान हैं वे सारे ज्ञान अनुमान होते हैं, प्रत्यक्ष नहीं होते। क्षणिकवादियोंका प्रत्यक्ष निर्विकल्प हुआ करता है। जहाँ ही कुछ समझमें आया प्रत्यक्ष न रहा, अनुमान बन गया। तो जैसे स्वलक्षणादिकमें संकेत सम्भव नहीं है इसलिए शब्दका अर्थपना घटित नहीं होता इसी प्रकार अपोहका भी संकेत नहीं सम्भव हो सकता, इसलिए वह भी शब्दका वाच्य नहीं हो सकता। किसी भी शब्दके द्वारा क्षणिकवादमें अर्थका ज्ञान नहीं होता, क्योंकि अर्थ पदार्थ क्षणिक निरन्वय निरंश है। उसका तो विकल्पसे बोध होता ही नहीं निर्विकल्प प्रत्यक्ष गम्य है। जहाँ हो कुछ समझ बनी, विकल्प हुआ वहाँ अनुमान प्रमाण बन गया। सविकल्प ज्ञान बना तो वस्तुके स्वलक्षणमें स्वरूपमें जैसे संकेत नहीं मानते क्षणिकवादी और इसी कारणसे शब्दका वाच्य नहीं होता है पदार्थ किन्तु काल्पनिक तत्त्व शब्दका वाच्य होता है तो इसी प्रकार अपोहमें भी संकेत सम्भव नहीं है इसलिए अपोह भी शब्दका वाच्य नहीं हो सकता। जब कोई पुरुष शब्दके अर्थका निश्चय करले कि इस शब्दका यह अर्थ है तो ऐसा संकेत कर सकने वाला पुरुष ही तो संकेत कर सकता है पर अपोहका किसी भी पुरुषके द्वारा इन्द्रियसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योंकि अपोह अवस्तु रूप है। अपोह, अभाव, व्यवच्छेद, निषेध यह क्या इन्द्रियके गम्य हुआ करता है। इन्द्रिय तो वस्तुको जानती है तो अपोह का पहिले निश्चय भी नहीं हो सकता, ज्ञान ही न हो सका। अपोहका ज्ञान प्रत्यक्ष व अनुमान द्वारा नहीं होता, क्योंकि वस्तुभूत सामान्यके बिना अनुमानकी अप्रवृत्ति है। अनुमान कब बनता है ? जब सदृश धर्म मानें, किसी भी साध्यको सिद्ध करनेके लिए जो भी साधन बनाया जायगा वह साधन दृष्टान्तमें पाये गए साधनके समान है। यह बोधमें आये तब अनुमान बनेगा। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे तो स पर्वतभूत जो धुवाँ देखा गया इस धुवाँके सादृश्यका भी तो ज्ञान है इसका कि रसोई घरमें भी ऐसा ही धुवाँ पाया जाता है। तो सादृश्य धर्म माने बिना अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होती। क्षणिकवादमें सदृशता नहीं मानी गयी। सब निरंश है, विलक्षण है, क्षणिक हैं। उनकी सदृशता क्या है। तो जब अपोहकी ही सिद्धि नहीं हो सक रही तब फिर शब्दका वाच्य अपोह है यह कहना तो व्यर्थ है।

अन्यापोहमात्रमें संकेतकी अव्यवस्था—अच्छा, मान लो कि अपोहमें भी संकेत भी बन गया तो भी गो शब्द कहकर अश्वादिक अ भेद्य हैं अर्थात् गो के कहने से अश्वका ग्रहण नहीं होता। यह तुमने कैसे जाना ? संकेत भी मान लो तो शब्द बोलकर गाय अभिधेय है। घोड़ा अभिधेय नहीं है अर्थात् गो शब्दसे घोड़ा नहीं कहा गया, यह ज्ञान कैसे करोगे क्योंकि गो शब्दका अर्थ तो अगोपोह है, अभाव है। उसमें प्रत्यक्षसे तो संकेत है नहीं। यदि कहोगे कि जब सम्बन्धका अनुभव हुआ उस कालमें शब्दके विषयरूप अश्व आदिक नहीं देखे गए। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी तुम्हारा कथनमात्र है। सही उत्तर नहीं बनता, क्योंकि गो शब्दके संकेतके समय जो कुछ देखा गया उसको छोड़कर अन्य जो अश्व है उसमें यदि गो शब्दकी प्रवृत्ति नहीं मानते तो एक ही उस ही एक संकेतके द्वारा विषय किया गया। जो चितकबरी गाय है, उस से जो अन्य भिन्न गायें हैं लाल पीली आदिक वे भी गो शब्दसे क्यों अपोह्य न होंगी अर्थात् जब यह मान रहे हो कि जो शब्द बोला गया है जिस चीजको देख करके उस के अलावा अन्य वस्तुओंमें तुम गो शब्दकी प्रवृत्ति नहीं मान रहे ऐसा शंकाकार कह रहा तो देखो तो गई चितकबरी गाय और उसको देखकर बोले गो तो चितकबरी गायके अलावा अश्वादिक तो अपोह्य हो गए। तो लाल पीली गायका अपोह हो जायगा। उनका भी हटाव हो जायगा। गो शब्दसे फिर अन्य गायका ग्रहण न होगा। जिस ही गायको देखकर बोला है उसमें ही रह जायगा। तो फिर उस शब्दसे अश्व की भी निवृत्ति हुई और अन्य गायकी भी निवृत्ति हो जायगी। इस कारण ऐसी क्लिष्ट कल्पना करना कि गो शब्द यदि बोला तो उसका अर्थ हुआ गोसे भिन्न अनेक का अगोपोह। ऐसे शब्दका वाच्य कोई भी प्रतीत नहीं करता।

अन्यापोहमें इतरेतराश्रय दोष—और भी देखिये गो शब्दसे वाच्य हुआ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अगोपोह और अगोपोह समझकर गौमें बनावोगे संकेत तो इसमें इतरेतराश्रय दोष हो जायगा, क्योंकि अगोके हटावसे तो गायकी प्रतिपत्ति होगी। जितने अगो है। जो गाय नहीं हैं ऐसे अश्व आदिक उन सबका व्यवच्छेद होगा तब तो गायका ज्ञान होगा और अगोंके व्यवच्छेदमें कहा यह है कि जो गाय नहीं है, तो जब पहिले गायका बोध होगा तब ही तो निषेधके लिये समझ पायेंगे कि अगो यह कहलाता है तो फिर वहाँ गो का अर्थ जानना पड़ेगा। जिस गौ का इतना प्रयास करके निषेध कर रहे हो अगो तो जब अगौका निषेध हो तब गायका ज्ञान हो, जब गायका ज्ञान हो तो अगोका व्यवच्छेद हो सके कि यहां यह नहीं है। तो इसमें इतरेतराश्रय दोष क्या होगा, क्योंकि जिसका स्वरूप ज्ञात नहीं किया गया उसका निषेध किया ही नहीं जा सकता। यदि कहो कि अगो निवृत्त स्वरूप ही तो गौ है तो इसमें भी वही इतरेतराश्रय दोष है। अगोनिवृत्त स्वभाव होनेसे गायके अगोके ज्ञानसे प्रतीति बनेगी। जब पहिले हम जान लें कि यह यह है अगो इसको हटाकर गायका ज्ञान हुआ तो अगो निवृत्त स्वभाव होनेसे गायका ज्ञान अगोके ज्ञानसे हुआ और अगोका ज्ञानसे हुआ और अगोका ज्ञान कि यहां यह गाय नहीं है यह कब होगा? जब गायका ज्ञान होगा। तो गौका ज्ञान होनेपर गौका ज्ञान हुआ। इस तरह यहाँ भी इतरेतराश्रय दोष हो जाता है। शब्द बोलकर सीधा अर्थका ज्ञान न माननेपर तो बड़ा विलम्ब होगा और स्पष्टता भी नहीं आ सकती। और प्रतीति विरुद्ध भी बात है। जितने ये शास्त्र आगम पढ़े जा रहे हैं उनमें जो जो बातें सुनी समझी जा रही हैं उन सबका ज्ञान क्या इस तरह अन्यापोह लगा लगाकर हुआ करता है? चौकी बोला तो शीघ्र चौकी अर्थका बोध हो गया। जो शब्द बोला उसके द्वारा संकेत किए गए अर्थका बोध हो जाता है। तो सहज योग्यता और शब्द संकेतकी वजहसे शब्द पदार्थका प्रतिपादक बन जाता है। और शब्द होता है पुरुषके द्वारा उच्चारण किया गया, सो जो पुरुष गुणवान हो उसका वचन प्रमाणभूत होता है। जो पुरुष दोषवान हैं उसके वचन अप्रमाण होते हैं। शब्द सीधे ही अर्थके प्रतिपादक बनते हैं, अन्यापोहके प्रतिपादक नहीं हुआ करते।

इतरेतराश्रयदोषको दूर करनेके लिये बीचमें गो शब्दका वाच्य विधि माननेपर अपोह कल्पनाकी व्यर्थता—शंकाकार कहता है कि अगो शब्दसे अर्थात् "गाय नहीं है" इस शब्दमे जिस गायका निषेध किया जा रहा है वह गाय विधिरूप ही प्रतीत होती है और उस निषिद्ध गायकी विधिरूपता प्रतीत होनेका एक यह भी कारण है कि अगोव्यवच्छेद रूप अपोहकी सिद्धि हो जाती है, इस कारणसे इतरेतराश्रय दोष न होगा। ऊपर जो इतरेतराश्रय दोष दिया है कि जब गौका ज्ञान हो तो अगोव्यवच्छेद बने, जब अगोव्यवच्छेद बने तब गौका ज्ञान हो, तो इसमे जब व्यवच्छेद का प्रसंग आता है कि इसमें किसका व्यवच्छेद किया जा रहा है तो वहाँ विधिरूप गौ जानी जाती है, इस कारणसे अब इतरेतराश्रय दोष नहीं हो सकता। उत्तर देते हैं कि यदि ऐसी बात है अर्थात् इस बीच गौ विधि रूप बन गया तो फिर यह बात तो न

http://sahjanandvarnishastra.org/

रही कि सभी शब्दोंका अपोह अर्थ है। देखो ना इस प्रसंगमें अगो व्यवच्छेदरूप अपोह की सिद्धिके लिए जिस गायका निषेध किया जा रहा है उस गायको विधिरूप मान लिया, तब फिर अपोहकी कल्पना करना व्यर्थ है। समस्त शब्दोंके अर्थ विधिरूप मान लीजिये और हैं भी। तो इसमें कौन सी आपत्ति है? जो बात सीधी स्पष्ट है शब्द बोलते ही अर्थका परिज्ञान हो जाता है अन्यापोह जैसी बात बुद्धिमें नहीं आती है फिर क्यों अन्यापोह लादा जा रहा है? यदि शब्दोंके अर्थ विधिरूप किसी भी प्रकार नहीं हो सकते तो वही इतरेतराश्रय दोष फिर अनिवार्य है।

अन्यापोहसे विशेष्य विशेषणभावके समर्थनकी मीमांसा— शंकाकार कहता है कि अन्यापोहके होनेसे विशेष्य विशेषण भावका भी समर्थन हो जाता है इस कारण अन्यापोह आवश्यक है। देखो—जब कहा—नीलकमल तो नीलका अर्थ क्या है? अनीलनिवृत्तिविशिष्ट, और कमलका अर्थ क्या है? अकमलनिवृत्तिविशिष्ट। तो शब्द जितने होते हैं वे अपने अन्यापोहसे विशिष्ट हुआ करते हैं। तो शब्दोंमें विशेषण सिद्ध हैं शब्दोंकी खासियत शब्दों द्वारा वाच्य जो भी अर्थ होता है उसका विशेषण अन्यापोह से ही बना करता है। तो यों नीलकमल आदिक शब्द अनीलकमलकी निवृत्तिसे विशिष्ट अर्थको बताते हैं, इसमें विशेष्य विशेषण भावका समर्थन हो जाता है। इस कारण अन्यापोह व्यर्थ चीज नहीं है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात अयुक्त है। जिसका जिसके साथ वास्तविक सम्बन्ध हो उसको उससे विशेषित करना तो युक्त है अर्थात् जिस विशेष्यका जिस विशेषणके साथ वास्तविक सम्बन्ध हो तो उस विशेष्यको उस विशेषणसे विशिष्ट कहना यह बात तो सही है परन्तु नीलकमल अनील कमलकी व्यावृत्तिसे विशिष्ट है इस कथनमें यहाँ दो ही बातें आयी। नीलका विशेषण है अनील व्यावृत्ति और कमलका विशेषण है अकमल व्यावृत्ति। सो देखो विशेष्य तो है विधिरूप और विशेषण है अभावरूप। अनीलका अभाव तो विधिरूप विशेष्य अभावरूप विशेषणसे कोई सम्बन्ध सम्भव हो सकता है क्या? न तो नील और न अनील निवृत्तिमें आधार आधेय सम्बन्ध हैं न संयोग सम्बन्ध है, समवाय सम्बन्ध है। न एकार्थ समवाय सम्बन्ध है। न तादात्म्य सम्बन्ध है, किसी भी प्रकारका सम्बन्ध तो नहीं है फिर विशेष्य विशेषण भाव बन कैसे जायगा? जब सम्बन्ध ही वास्तवमें नहीं तब फिर उससे विशिष्ट कहना यह कैसे युक्त हो सकता है? अन्यथा अर्थात् सम्बन्ध न होनेपर भी एकको दूसरेसे विशिष्ट कह दें इस हठमें बड़ा दोष आयगा। बिल्कुल भिन्न भिन्न दिशावोंमें रहने वाले दो पर्वत हों तो वहां भी यह कह बैठो कि इस पर्वतका यह पर्वत विशेषण है। तो नील और अनील निवृत्ति यह भाव और अभावरूप है, यह विशेष्य विशेषण नहीं बन सकता। भाव और अभावका कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। इसी प्रकार कमल और अकमल व्यावृत्ति यह भाव और अभाव रूप है। इसमें भी कोई सम्बन्ध नहीं बन सकता तो विशेष्य विशेषण भावके समर्थन के लिये भी अपोहकी कल्पना करना व्यर्थ है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वस्तुकी अन्यव्यावृत्त स्वभावता शंकाकार कहता है कि यह प्रसंग तो स्याद्वादियोंके यहाँ भी लग सकता है क्योंकि वे भी तो वस्तुको अस्तिनास्तिरूप मानते हैं। वस्तुका अस्तिरूप विशेषण भी है और वस्तुका नास्तिरूप भी विशेषण है। समाधानमें कहते हैं कि स्याद्वादी लोग अनीलकी व्यावृत्तिसे विशिष्ट नील है ऐसा नही कहते या अकमल व्यावृत्तिसे विशिष्ट कमल है ऐसा नही कहते ऐसा कहनेमें ही तो वह दोष आ रहा था कि अनील व्यावृत्ति तो अभावरूप है और उसमें फिर विशेषित कर रहे हो नीलको भाव और अभावमें सम्बन्ध कैसे बन सकता है ? तो स्याद्वादमें इस प्रकार नही कहा है कि अनील व्यावृत्तिसे विशिष्ट नील है और अकमल व्यावृत्तिसे विशिष्ट कमल है। तो फिर क्या कहा गया है कि नील ही अनीलसे व्यावृत्त स्वरूप है इसमें विशेषण विशेष्यकी बात आयी है। कमल ही अकमलसे व्यावृत्त स्वरूप है। पदार्थ हैं और वह अपने द्रव्य क्षेत्र, काल, भावसे है। यह पदार्थके स्वरूपकी ही बात है। और, वह पदार्थ अन्य पदार्थोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे ही नही है। यह उस पदार्थके ही स्वरूपकी बात है इसमें विशेषण विशेष्यकी बात नहीं कही गई है। वस्तुस्वरूप स्वयं के अस्तित्वरूप है और परके नास्ति स्वरूप है। शंकाकार कहता है—तो फिर यही बात तो "अर्थान्तरकी व्यावृत्तिसे विशिष्ट है" इस शब्दसे कह रहे हैं। जिसको तुम वस्तुका स्वरूप मानकर कह रहे हो कि अन्यके नास्तित्वरूप है पदार्थ उस ही को हम अर्थान्तरको निवृत्तिसे विशिष्ट कह रहे हैं। यह वस्तु विशेषित हुई है अर्थान्तरके अभावसे। उत्तर देते हैं कि यह बात क्षणिकवादमें बन नही सकती, क्योंकि क्षणिकवादमें है वस्तु स्वलक्षणरूप। क्षणिक निरन्वय निरंश, यों समझिये कि कथनमात्र। उस वस्तुको शब्दसे कहा ही नही जा सकता। क्योंकि शब्द द्वारा उस वस्तुका संकेत नही बनता। जो क्षणिक है, निरन्वय है, निरंश है उसका संकेत क्या ? स्वलक्षणमें व्यावृत्तिसे विशिष्टता सिद्ध नही हो सकती। क्षणिकवादके सिद्धान्तके अनुसार संकेत तो उसमें बना करते हैं, जो अन्यापोहसे विशिष्ट हो क्योंकि शब्दका वाच्य है अन्यापोह, पर स्वलक्षणमें अन्यापोह है, स्वलक्षणमें अन्यापोह सिद्ध नही हो सकता, क्योंकि अन्यकी व्यावृत्ति रूपको कहते हैं सामान्य और सामान्य अथवा सारूप्य क्षणिकवादमें माना ही नही गया। तो जब स्वलक्षणमें अन्यापोह नही बना तो यह सिद्ध हुआ कि वस्तु अपोहरूप नही है, किन्तु वस्तु असाधारण है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल-भावको लिये हुए वस्तु है। वस्तु अन्यापोहात्मक नही है। अर्थात् केवल अन्यके अभाव मात्र हो सो नही किन्तु वस्तु विधिरूप है। और उस विधिरूप वस्तुका फिर अन्यकी व्यावृत्ति रूपसे परिज्ञान होता है। तो अन्यापोह हुआ अवस्तु और यह पदार्थ है सब वस्तु तो वस्तु और अवस्तुका सम्बन्ध बन नही सकता, क्योंकि सम्बन्ध हुआ करता है दो वस्तुवोंमें। एक अवस्तु हो तो उनका सम्बन्ध क्या बनेगा ? शंकाकार का आशय था कि हम जो भी शब्द बोलते हैं, शब्दका जो संकेत होता है उससे जो वस्तु जानी जाती है वह वस्तु अन्यापोहसे विशिष्ट है। जैसे कहा—चौकी, तो चौकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का विशेषण क्या हुआ ? अचौकीका व्यवच्छेद । तो जितने भी शब्द हैं वे तो हैं विशेष्य और अर्थान्तर व्यावृत्ति, यह है उसका विशेषण, इसपर बात बतायी गई थी कि देखो—विशेष्य तो हुआ विधि रूप, जैसे यह चौकी और जिसे तुम विशेषण कह रहे हो अचौकीका अभाव वह है अभावरूप, तो भावरूप और अभावरूपमें सम्बन्ध नहीं बन सकता। सम्बन्ध वहां ही बना करता जहाँ दोनों भावरूप हों।

अपोहके विशेषणत्वकी असिद्धि अथवा सम्बन्ध मान भी लो तो भी अपोहकी विशेष्यता नहीं बन सकती क्योंकि इतना कहने मात्रसे कि अपोह है, इतने अस्तित्व मात्रसे कोई विशेषण नहीं बन जाया करता, किन्तु किस तरह कोई विशेषण बनता है कि ज्ञात होकर फिर अपने आकारसे अनुरक्त बुद्धिके द्वारा विशेष्यको रंजित करे तो वह विशेषण होता है। जैसे, नील कमल कहा तो नील, यह जाना गया ना। नेत्र इन्द्रियसे जो नील देखा है तो विदित हुआ कि यह नील है, फिर अपने आकारसे अनुरक्त बुद्धिके द्वारा अर्थात् नीलका जो स्वरूप है उस स्वरूपमें यह बुद्धि जम गयी अर्थात् बुद्धिने खूब परिज्ञान किया—यह नील, अब उस बुद्धिसे याने नील रूपसे विशेष्यको रंजित करदे अर्थात् नील बुद्धिसे कमलको जान ले नील कमल इस तरह विशेषण बना करता है पर अपोहमें तो यह विधि बन ही नहीं सकती। प्रथम तो अपोह ज्ञात नहीं है क्योंकि अवस्तु है और फिर अपोहके आकारसे अनुरक्त बुद्धि नहीं बनती जिस बुद्धिसे पदार्थको रंजित किया जाय इस कारण अपोह पदार्थका विशेषण नहीं बन सकता शङ्काकारका यह आशय है कि जैसे कहा है ना नीला कमल, तो यहाँ नीला विशेषण है कमल विशेष्य है इसी तरह प्रत्येक शब्द इकहरा भी हो तो भी वह विशेषणसे सहित होता है। जैसे कहा कमल तो इसमें यह जाना गया कि अकमलकी निवृत्तिसे विशिष्ट कमल। तो कमल हुआ विशेष्य और अकमलकी निवृत्तिसे विशिष्ट यह हुआ विशेषण। याने प्रत्येक शब्द अन्यापोह विशेषणको लिए हुए होता है लेकिन कुछ भी विचार करनेके बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्यापोह विशेषण नहीं बन सकता क्योंकि ज्ञात होकर अपने आकारसे अनुरक्त बुद्धिके द्वारा विशेष्यको रंजित करे उसे विशेषण कहते हैं, यह बात अपोहमें सम्भव ही नहीं है। अपोहमें हम जितना व्यवच्छेद करते हैं, जैसे गौ शब्द कहा तो उसमें अश्वादिककी निवृत्ति करते हैं। तो अश्वादिककी बुद्धिमें, अश्वादिकका अभाव ऐसा कहनेसे जो अश्वादिक शब्द जाना और तुरन्त बुद्धि हुई उस बुद्धिसे अपोह नहीं जाना जा रहा, किन्तु क्या जाना जा रहा ? वस्तु ! प्रत्येक जगह वस्तु ही जानी जाती, अवस्तु, अभाव, अपोह नहीं जाना जाता। जैसे किसीने कहा कि उस कमरेमें अमुकचन्द बैठे हैं, बुला लावो ! देखने वाला गया, वहाँ अमुकचन्द मिले नहीं तो वह कहता है कि वहाँ तो नहीं हैं ! अरे तू अच्छी तरहसे देख आया ? तो उत्तर देता है हाँ, मैंने खूब अच्छी तरह देखा, वहांपर नहीं है। तो अमुकचन्दके निषेधको आँखोंसे देखा क्या ? अमुकचन्द रहित पृथ्वीको देखा। देखनेमें भावरूप चीज आई या अभावरूप ? भावरूप आई ! हाँ वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभावकी कल्पनासे सहित हो। तो जब यह कहा—गौका अर्थ क्या अश्वादिककी निवृत्ति ? किसकी निवृत्ति ? अश्वादिककी ! यह कहकर अश्वादिक जाने गये। जिनकी निवृत्ति करना है वह वस्तुरूप जानी गयी, यों ही गौ जब कहा तो गौ भी वस्तुरूप जानी गई। अपोहका ज्ञान ही सम्भव नही है। और जो अज्ञात हो वह विशेषण नही बन सकता। यह कहना कि जितने भी शब्द होते हैं वे सब विशेषण सहित होते हैं। जैसे बोला चौकी, तो इसका अर्थ है अचौकीकी व्यावृत्तिसे विशिष्ट, यह तो हुआ विशेषण और चौकी हुई विशेष्य। अगर वह विशेषण अपोह है, अग्रहीत है, जिसका विशेषण ग्रहण नही होता उसकी बुद्धि विशेष्यमें कैसे बन सकती है ? इस कारण अपोहका ज्ञान ही सिद्ध नही है।

अर्थमें अपोहकारबुद्धिके अभावसे अविशेषणता—अथवा मानलो अपोह का ज्ञान हो गया, गौ कहनेसे जो वाच्य अगोपोह बनाया उसका ज्ञान हो गया तो भी अगोपोह गौका विशेषण नही बन सकता, क्योंकि विशेषण वह बना करता है कि जिस आकारकी बुद्धि पदार्थमें जाय जैसे बोली चौकी, तो पीले स्वरूपकी बुद्धि चौकीमें पहुँच गयी, तब चौकीका विशेषण पीला बना। समस्त वस्तुवें स्थिर स्थूल आकार रूपसे जानी जाती हैं न कि अन्यापोहरूपसे जानी जाती हैं। जैसे गाय कहा तो उस का जैसा स्थिर स्थूल चार पैर, बड़ा पेट, सींग आदिक आकार है उस आकार रूपसे गाय जानी गयी। स्थिर स्थूल आकार रूपसे पदार्थ जाना जाता है अन्यापोहरूपसे नही जाना जाता है वह तो तर्कणाके बाद ज्ञात होता है तो पदार्थ उन क्षणिक वादियोंके द्वारा माने गए स्वलक्षणरूप पदार्थमें अर्थात् क्षणिक, निरन्वय, निरंशरूप अर्थमें स्थिर स्थूल आकारकी भी बुद्धि नही और अभावरूप अपोह आकारकी भी बुद्धि नही। उसमें विशेष्यता क्या बनेगी ? सारे विशेष्य अपने आकारके अनुरूप विशेष्यमें बुद्धि उत्पन्न करते हुए देखे गए हैं। जिस पदार्थका जो विशेषण बनाया जाय, जैसे कहा कि यह पुरुष मोटा है तो मोटा विशेषण मोटाईके अनुरूप बुद्धिमें विशेष्यको ला देता है अर्थात् मोटा जहाँ ऐसी बुद्धिको उत्पन्न करे वह तो विशेषण है, पर अन्य प्रकारका विशेषण अन्य प्रकारकी बुद्धिमें उत्पन्न करदे यह बात नही बन सकती। अर्थात् अन्यापोहमें तुम विशेषणको कहते हो अभावरूप और विशेष्य है भावरूप। तो अभावरूप विशेषण भावरूप बुद्धिको विशेष्यमें कैसे उत्पन्न कर देगा ? जैसे नील कमल कहा तो नीलकमलमें उस नील बुद्धिको ही उत्पन्न करेगा कि लाल इस बुद्धिको उत्पन्न कर देगा ? कहा तो है नीलकमल और युक्ति बनायी जाय लाल कमल, तो यह तो नही बनता, तो इसी प्रकार विशेषण तो है अभावरूप और विशेष्य उसका बन जाय भावरूप तो यह नही हो सकता।

भावाकाराध्यवसायके बिना वस्तुत्वका अभाव—शंकाकार कहता है कि गौ शब्द कहते हो उससे अगोपोह जाना है। अश्व आदिककी निवृत्ति जाना है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो वहाँ होता गया है कि अश्व आदिक उसके अभावसे अन्वय ऐसी बुद्धि गोमें होती है। कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं। अश्व आदिकमें अभावानुरक्त शाब्दी बुद्धि नहीं होती किन्तु भावाकारका निश्चय कराने वाली शाब्दी बुद्धि उत्पन्न होती है। गो कह कर उस गायमें जो अवयव पाये जाते हैं जो स्थिर स्थूल आकार पाया जाता है उस समस्त आकारका निश्चय कराने वाली शाब्दी बुद्धि बनती है। तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि विशेषण विशेष्य वहाँ बना करते हैं जहाँ अपने आकारके अनुरूप बुद्धि जगती है। अपने आकारके अनुरूप बुद्धिको न उत्पन्न करनेपर भी यदि अपोहको विशेषण मान लिया जाय तो सब सभीके विशेषण बन जायेंगे। क्योंकि विशेषणका कोई अर्थ न रहा। विशेषणका महत्त्व यह था कि विशेषणमें जो बात कही गई उसके अनुरूप बुद्धि विशेष्यमें जगी। अब अपोहकार बुद्धि माना नहीं अपोहकार बुद्धि क्या पदार्थमें जगती है। भावाकार निश्चय करने वाली बुद्धि जगती है। अब तुम मान रहे हो कि न भी जगे स्वाकारके अनुरूप बुद्धि तो भी विशेष्य बन जाता है तो फिर जिस चाहेका विशेषण बन जाय। क्योंकि विशेषण विशेष्य भावकी कोई व्यवस्था मानी ही नहीं जा रही और फिर अश्वादिकमें शब्दजन्य बुद्धिके साथ अनुराग माना जाय तो वस्तु स्वलक्षणके अभावरूपसे प्रतीति हुई तो वह वस्तु ही फिर न रही। जब पदार्थका अभावरूपसे प्रत्यय हुआ फिर पदार्थ ही क्या रहा। क्योंकि भावमें और अभावमें विरोध है। अभावरूपसे पदार्थ जाना गया इसका मतलब क्या? पदार्थ ही न रहा। तो इसी प्रकार भाव विशेष्य हो और अभाव विशेषण बन जाय, यह किसी प्रकार युक्त नहीं है। तब निष्कर्ष यह निकला कि शब्दका वाच्य पदार्थ है, अन्यापोह नहीं है।

शब्दसे अवाच्य होनेसे स्वलक्षणको व्यावृत्तिसे विशिष्ट जाननेकी अशक्यता— अपोहसे असाधारण वस्तुका विशेष्य विशेषण भाव नहीं बन सकता। क्योंकि जब असाधारण वस्तु अर्थात् स्वलक्षण, क्षणिक निरन्वय निरंश शब्दके द्वारा जाना ही नहीं जा सकता तो फिर अज्ञात स्वलक्षणमें व्यावृत्तिसे विशिष्टता करना कैसे जाना जा सकता है जब विशेष्य ही शब्दसे नहीं जाना गया तो अभावरूप विशेषणसे उसको विशिष्ट करना कैसे युक्त हो सकता है? स्वलक्षण क्षणिक माना है। क्षणमें हुआ, नष्ट हो गया, उसकी सकल ही नहीं पहिचानी जा सकी। उसका विकल्प ग्रहण भी न किया जा सका। स्वलक्षण है निरन्वय। कुछ भी क्षणमात्र अपना अन्वय न रख सका। तो जो दूसरे क्षण भी अपना अन्वय नहीं रखता, किसीमें नहीं रहता तो उसकी सकल भी क्या समझी जाय और शब्द भी उसका क्या संकेत करे? स्वलक्षण माना गया है निरंश। जब उसमें कुछ अंश ही नहीं, कुछ स्थिर स्थूल आकार ही नहीं तो संकेत किसमें किया जाय? यों असाधारण वस्तुमें जब संकेत ही नहीं बनता, वह शब्दसे जाना ही नहीं जाता तो उसको अन्यव्यावृत्तिसे विशिष्ट कहना यह कैसे समझा जा सकता है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विध्यात्मक पदार्थकी शब्दविषयता शब्दका विषय क्षणिक निरन्वय निरंश तो नही है. किन्तु उस शब्द द्वारा वाच्य सारूप्य विशिष्ट अर्थ है। सामान्य पदार्थ शब्दका विषय होता है, और ये व्यक्तियाँ भी जनके नाम रखे गए हैं लोक व्यवहारमें वे भी शब्दके विषय होते हैं। जो सारूप्यवान हैं स्थिर, स्थूल आकार वाले हैं वे सब शब्दके विषय होते हैं पर अत्यन्त असाधारण कथन मात्र क्षणिक निरन्वय निरंश स्वलक्षण वस्तुका विषय नही होता। जो ऐसी असाधारण वस्तु हैं वे शब्द द्वारा वाच्य नही होते। तो जो वाच्य ही नही है शब्दके द्वारा उसका निराकरण ही क्या किया जा सकता है ? यहाँ यह बात विशेष जानना कि क्षणिकवादियों द्वारा अभिमत असाधारण वस्तु जो स्वलक्षणमात्र है, क्षणिक निरन्वय निरंश है उसके सामने लोक व्यवहारमें माने गए व्यक्ति भी सामान्यरूप हैं क्योंकि इनमें सारूप्य पाया जाता है। तो शब्द द्वारा वाच्य ये अर्थ सामान्य हुए किन्तु क्षणिक वादियोंद्वारा अभिमत असाधारण स्वलक्षण विशेष शब्दों द्वारा वाच्य नही होता और फिर अपोहोंकी बात तो अभावरूप है। अपोह भी कुछ चीज है या नही ? ऐसा प्रश्न करनेपर उस अपोह शब्दको वाच्य मानना पड़ेगा अनपोह व्यावृत्ति, तो जब अपोह ही स्वयं अभावरूप है तो अभावको यह कहना कि अन्याभाव व्यावृत्ति रूप है अर्थात् अभावमें अन्य अभाव का व्यवच्छेद है तो इसका अर्थ ही क्या हुआ ? अभाव कहीं अपोह्य होता है। अभाव का कहीं अभाव भी होता है। अरे प्रतिषेध भी किया जाय तो वस्तुका ही किया जा सकता है। तुच्छ भावरूपका प्रतिषेध क्या ? और फिर अवस्तुका प्रतिषेध करना, अभावको अपोह्य बताना इसका अर्थ है वस्तुपना। अभावका अभाव क्या है कोई वस्तु है भाव है तो शब्दका वाच्य विध्यात्मक वस्तु माने बिना तो कही टिकाव ही नही हो सकता अब बतलावो—अपोहोंका अपोहपना क्या रहा ? इस कारणसे अश्वादिकसे गो आदिकका अपोह होता हुआ वह अपोह सदृशपरिणाम धर्मवानका ही तो होगा, क्योंकि स्वलक्षण अवस्तु है सारूप्यवान वस्तु है। वह ही अपोह्य बतायी जा सकती है। गो है वह सामान्य है, अश्व है वह सामान्य है। यहाँ सामान्यका अर्थ स्वलक्षण क्षणिक निरंश रूप असाधारणसे विलक्षण तत्त्व है, इस कारण शब्दका वाच्य अपोह्य नही माना जा सकता। शब्दका वाच्य तो सीधा विध्यात्मक पदार्थ है।

अपोहोंमें अभावरूपसे अपोह्यत्वकी असंभवता अब और बताओ कि अपोह तो नाना हो गए जितने अर्थ हैं उतने अपोह हैं अर्थ अनन्तानन्त हैं तो उनके वाच्य शब्द जो भी बोले जायेंगे उन शब्दों द्वारा वाच्य अनन्तानन्त अपोह होंगे। तो उन अपोहोंमें परस्पर कुछ भिन्नता है या नही ? यदि कहो कि अपोहोंमें परस्पर भिन्नता है, विलक्षणता है तो अभाव जो अगोशब्दके द्वारा अभिधेय है, गो शब्द कहने पर अगोव्यावृत्ति जो वाच्य कहा जा रहा है उसमें जो अगोशब्दके द्वारा अभिधेय अभाव है उसका अभाव क्या ? वह गो शब्दके द्वारा अभिधेय माना तो वह अभाव पूर्वोक्त अभावसे भिन्न है यदि तो उसका अर्थ भाव हो कहलाया, क्योंकि अभावको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निवृत्ति मायने भाव। भाव अभावकी निवृत्तिरूप हुआ करते हैं यदि कहो कि अगो शब्द द्वारा अभिधेय अभागका अभाव यदि पूर्वोक्त अभावसे विलक्षण नहीं है। अभाव से अभाव अभावसे जुदा नहीं है, तो इसका अर्थ हुआ कि गो भी अगो बन गयी, क्यों कि अभाव समस्त एक स्वरूप हैं और तुच्छाभाव रूप हैं। तो अगो शब्द द्वारा वाच्य जो अपोह है उससे भिन्न बन गया गो शब्द द्वारा वाच्य अपोह, तो जब ऐसी अभिन्नता बन गयी तो गो शब्दमें और अगो शब्दके द्वारा वाच्य अपोहमें तादात्म्य बन बैठेगा। इससे अर्थ रूपसे माने गये अपोहोंमें भेद सिद्धि नहीं होती।

वाचकाभिमत अपोहोंमें भेदकी असिद्धि—यहां अपोह दो प्रकारसे देखे जा रहे हैं। वाचक अपोह और वाच्य अपोह। वाच्यरूपसे माने गए अपोहोंमें भेदकी सिद्धि न हो सकी। अब यदि कहो कि वाचक शब्दरूपसे माने गए अपोहोंमें भेद सिद्ध कर लिया जायगा सो भी बात युक्त नहीं हैं, क्योंकि शब्द हैं दो प्रकारके एक तो सामान्यवाची और दूसरा विशेषवाची। जैसे गाय, अश्व, ये सामान्यवाची शब्द हैं। इन शब्दों द्वारा जो जातिमात्रका बोध होता है, अश्व जाति मात्रका परिज्ञान होता है और विशेषवाची शब्द हैं—खण्डी मुण्डी शावलेय गाय आदिक। जैसे गाय तो सामान्यवाची शब्द और विशेषवाची खण्डी मुण्डी शावलेय आदिक इन शब्दोंका जो परस्पर में अपोह भेद है तो यह भेद हुआ कैसे? क्या वासनाभेदके कारण हुआ या वाच्यभूत अर्थके अपोहभेदके कारण हुआ? वासना कहते हैं पूर्व विकल्पादिक ज्ञान जो शब्दका विषयभूत है, शब्दका आलम्बन लेकर पहिले हुए विकल्पके सम्बन्धमें जो ज्ञान चलता रहता है उसको वासना कहते हैं। क्या इस वासनाभेदके कारण शब्दापोहोंमें भेद पड़ा है? या वाच्यभूत अर्थके अपोहके भेदसे शब्दापोहोंमें भेद पड़ा है? पहिली बात तो अयुक्त है अर्थात् वासनाभेदके कारण वाचकापोहोंमें भेद पड़ा है, यह बात यों अयुक्त है कि वाचकापोह भी तो अवस्तु है। अपोह मायने अभाव, तुच्छाभाव, निषेध मात्र। तो अवस्तुमें वासना ही कैसे सम्भव हो सकती है? वासनाकी असम्भवता अवस्तुमें यों है कि जहां विषय ही कुछ नहीं, वासनाका कारण ही कुछ नहीं, वहां वासनाका ज्ञान सविकल्प ज्ञान कैसे बन सकता है? तो यह कहा कि शब्दापोहोंमें जो परस्पर भेद हुआ है वह वासनाभेद निमित्तक है सो ठीक नहीं। यदि कहो कि वाच्य अपोहके भेद के कारण शब्दापोहोंमें भेद पड़ा है तो यह बात तो अब तक निराकृत ही निराकृत की गई अर्थात् किसी भी पदार्थका अर्थान्तर व्यावृत्ति बताया है, अन्यापोह बताया है, उसका तो निराकरण भली प्रकार कर दिया गया है।

अवस्तुरूप वाचकापोह व वाच्यापोहोंमें गम्य गमकभावकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि शब्दोंका भेद प्रत्यक्षसे ही सिद्ध है क्योंकि शब्दोंके कारणों में भेद पाया जा रहा हैं तालु ओंठ ये हैं शब्दोंके कारण और जब ये कारण नाना हैं और उनका प्रयोग करनेसे नाना तरहकी ध्वनियाँ बनती हैं तो शब्दोंका भेद तो अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आप सिद्ध हो गया। दूसरी बात यह है कि शब्दोंमें भेद प्रत्यक्षसे ही यों प्रसिद्ध है कि शब्दमें विरुद्ध धर्मोका हुए पाया जा रहा है। ये भिन्न-भिन्न शब्द हैं ना ? १६ स्वर ३३ व्यञ्जन और अनुस्वार आदिक और स्वरोंमें ह्रस्व दीर्घ उदात्त अनुदात्त स्वरित आदिक जो धर्म पाये जाते हैं उनके ग्रहणसे यह सिद्ध होता है कि शब्दोंमें भेद है। उत्तर कहते हैं कि यह बात तुम्हारे सिद्धान्तमें अयुक्त है। यद्यपि यह बात भली कही गई है वाचक शब्दको अंगीकार करके यह कहा गया है। लौकिक जन भी यों जानते हैं कि शब्द नाना प्रकारके हैं और कर्णेन्द्रिय द्वारा नाना शब्द ग्रहणमें आते हैं तो शब्दभेद वास्तविक है, और यह शंका क्या, यह तो सबका सिद्धान्त रख दिया, किन्तु क्षणिकवादमें यह भी बात नहीं बनती। क्योंकि शब्द क्या है ? एक स्वलक्षण जो श्रोत्रज्ञानमें प्रतिभास होता है किन्तु जिसकी सकल सूरत आकार ग्रहण कुछ भी न हो, ऐसा स्वलक्षणात्मक क्षणिक निरन्वय निरंश शब्द वाचक नहीं बन सकता क्यों कि जब शब्दका संकेत किया उस कालमें जो पदार्थ आया तो जब उसके समझनेका समय हुआ तब वह पदार्थ नष्ट हो गया। जब पदार्थ क्षणिक है, क्षणमें ही रहता है और नष्ट हो जाता है तो उनका वाचक शब्द कैसे बन सकता है ? जिस कालमें शब्द वाचक हुआ और मान लो उस क्षणमें पदार्थ भी है, संकेत बना पाया कि जब उसके समझनेका समय आया तो वह पदार्थ ही न रहा। तो आपके सिद्धान्तमें शब्द स्वलक्षण का वाचक नहीं बन सकता है तब शब्द भी अन्यापोह रूप हुआ और अर्थ भी अन्यापोह रूप हुआ। तो दोनों अवस्तु हो गए, दोनों अभावरूप हो गए। जो जो अवस्तुयें हैं उनमें गम्य गमक भाव नहीं होता। जब दोनों अभाव तुच्छ हैं, कुछ वस्तु ही नहीं है तो उनमें कोई गमक और कोई गम्य बन जाय यह बात नहीं बन सकती। जैसे आकाश का फूल और गधेके सींग। बताओ इनमें कौन तो गमक है और कौन गम्य है ? न आकाशका फूल ही वस्तुरूप है और न गधेका सींग सो वस्तुरूप है। तो अवस्तुमें गम्य गमक भाव नहीं हो सकता। तुम्हारा वाच्यापोह और वाचकापोह ये दोनों अवस्तु हैं। वाच्यापोह समान जो गो पदार्थ है वह क्या है ? अगोपोह। अगोव्यावृत्ति, और जो गो शब्द है वह क्या है ? अगोशब्दव्यावृत्ति। तो शब्द भी अन्यके अभावमात्र हुये। जो अभाव केवल एक तुच्छ प्रतिषेध मात्र है और पदार्थ भी अन्यके अभावमात्र हुए तो वाच्यापोह और वाचकापोह तब दोनों अवस्तु हो गए तो फिर इनमें गम्य गमक भाव नहीं हो सकता।

अभाव अभावोंमें गम्यगमकत्वके अभावपर प्रश्नोत्तर — अब शंकाकार कहता है कि यह कहना तो अयुक्त है कि अभावसे अभाव जाना नहीं जाता अर्थात् अभाव अभावमें गम्य गमक भाव नहीं होता। होता है, अभाव गमक होता है और अभाव गम्य होता है। जैसे कहा कि मेघका अभाव होनेसे वर्षाका अभाव है। जहां मेघ ही नहीं है तो वर्षा कहांसे होगी ? ऐसा सब जानते हैं। तो वहां मेघके अभावसे वर्षाके अभावका जो ज्ञान किया गया सो अभावसे अभावका ज्ञान किया गया ना, तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न रही कि अभाव और अभावमें गम्य गमक भाव नहीं होता। सो तुम्हारे इस कथनमें दोष आता है, क्योंकि यहां तो मेघका अभाव वर्षाके अभावका गमक बन गया। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी बात तुम्हारी अयुक्त है क्योंकि मेघका अभाव भी किसीके सद्भावरूप माना गया है और वृष्टिका अभाव भी किसीके सद्भावरूप माना गया है। जैसे मेघका अभाव क्या ? मेघसे विविक्त आकाश प्रकाश। इसका नाम है मेघका अभाव। जैसे घटका अभाव क्या ? घटसे विविक्त जो कमरे आदि विवक्षितकी जमीन है वह घटका अभाव है। जैसे कोई पुरुष कमरेको देखकर कहता है कि यहां घड़ेका अभाव है, तो उसने देखा क्या ? अभाव देखा। मायने घट रहित पृथ्वी दिखी। तो इसी तरह मेघके अभावके मायने क्या ? मेघरहित आकाश प्रकाश देखा। तो मेघका अभाव भी वस्तुरूप हुआ और वैसा ही वृष्टिका अभाव। तो स्याद्वाद सिद्धान्तमें इस प्रयोगमें भी वस्तुस्वरूप आया। मेघका अभाव होनेसे वर्षाका अभाव है ऐसा प्रयोग करनेपर वस्तु ही आयी क्योंकि अभाव भावान्तरके स्वभावरूपसे बनाया गया है। किसीका अभाव अन्यके सद्भावरूपसे समझा जाता है लेकिन क्षणिकवाद सिद्धान्तमें जहाँ केवल अपोहरूप ही अर्थ है, वाच्य है, मेघका अभाव मायने मेघका प्रतिबोध मात्र, तुच्छाभाव मात्र। और, कुछ नहीं। वर्षाका अभाव। वर्षाका प्रतिषेध, मात्र तुच्छाभाव और कुछ नहीं। अथवा मेघाभाव मायने अमेघाभाव व्यावृत्ति और वृष्टिभाव मायने अवृष्टिभाव व्यावृत्ति। तो जहां केवल अपोह ही तत्त्व है जो कि इस समय विवेचनमें चल रहा है ऐसे अभावरूप अपोहमें गम्यगमक भाव नहीं बन सकता और अपोहोंमें ही गम्यगमक भावका अभाव होना इतना ही नहीं किन्तु वर्षाके अभाव में और मेघके अभावमें भी गम्य गमक भाव नहीं बन सकता। जिसे लौकिक जन बहुत जल्दी समझ लेते हैं कि मेघका अभाव होनेसे वर्षाका अभाव है लेकिन अपोहवादमें तो इसका भी गम्यगमक भाव नहीं बन सकता।

अपोहकी विधिरूप व व्यावृत्तिरूप दोनों रूपोंसे अवाच्यता—और भी बताओ कि अपोह वाच्य है अथवा अवाच्य ? अर्थात् अपोह भी शब्दके द्वारा कहा जा सकता है अथवा नहीं ? यदि कहो कि वाच्य है तो विधिरूपसे वाच्य है या अन्य व्यावृत्तिरूपसे वाच्य है ? अर्थात् अपोह शब्द सीधा अपोह कह देता है या अपोह व्यावृत्ति इस शब्दसे कहेगा यदि कहो कि अपोह विधिरूपसे वाच्य है तब फिर सब शब्दोंका एकार्थ अपोह कैसे बन गया ? जब यहाँ अपोहको विधिरूप मान लिया तो टेक तो न चल सकी कि विधिरूप कुछ नहीं होता। सब कुछ अन्यापोहरूप होता। तो अपोहविधिरूपसे वाच्य तो माना नहीं जा सकता, क्योंकि इससे तो अपोहका खण्डन ही हो जाता है। यदि कहो कि अन्यकी व्यावृत्तिसे अपोहका भी जो अन्य अपोह है उसकी व्यावृत्तिसे जाना जायगा अपोह। तब तो इसका अर्थ यह हुआ कि अपोह भी सबके द्वारा जाना गया। कोई मुख्य तत्त्व नहीं है। यह सब अभाव रूप पड़ता है और उसमें कुछ समझा नहीं जा सकता। देखिये—सीधी स्पष्ट बातको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रसंगमें क्यों ऐसी क्लिष्ट कल्पना की गयी कि गो शब्द कहनेसे अगोपोह विदित होता है, यह पैर पेट वाली गाय विदित नही होती । इतनी क्लिष्ट कल्पना करनेका क्या प्रयोजन ? अथवा यों कह सकते हैं कि दार्शनिक लोग जो अपनेको विद्याविशारद समझते हैं ऐसी ही बात लोगोंके सामने रखना चाहते हैं कि जो बात अब तक सुनी न हो जैसी कोई तर्कणा कर सकता न हो उसमें ही तो विद्वत्ता दार्शनिकता विद्या-विशारदता समझी जा सकती है । इस भावसे भी कुछ थोड़ा रास्ता देखनेपर क्लिष्ट कल्पना करके और उसका एक विवरण करके समर्थन करें यह भी तो दार्शनिक विद्या विशारदोंकी एक रीति हो सकती है । शब्द द्वारा जो वाच्य है अपोह और अपोह भी वाच्य है अन्यापोहके द्वारा ऐसा माननेपर तो अनवस्था दोष हो जायगा । क्योंकि अपोहकी व्यावृत्ति अन्य व्यावृत्तिके द्वारा कही जायगी । तो यों अपोहको वाच्य तो कह नही सकते । यदि कहो कि अपोह अवाच्य है शब्दके द्वारा कहा जाने योग्य नही है तो अन्य शब्दार्थके अपोहको शब्द बता देते हैं । इस मतका फिर घात हो गया । यह कहना कि शब्द जितने हैं वे अन्य शब्दके अर्थके अपोहको कहते हैं । अब यहां मान रहे हो कि अपोह शब्दके द्वारा अवाच्य है फिर यह कथन कैसे सिद्ध होगा ।

शब्दसे स्वचतुष्टयवृत्त और परचतुष्टयवृत्त अर्थकी वाच्यता—इस अन्यापोहके सम्बन्धमें यदि कुछ तत्त्वका सम्बन्ध रखा होगा, तब इस ही तत्त्वका रखा होगा कि स्याद्वादमें भी तो वस्तु स्वचतुष्टयसे अस्तिरूप और परचतुष्टयसे नास्तिरूप कहा गया है । तो परचतुष्टयसे नास्तिरूप है इस अंशकी मुख्यता देकर यह बढ़ावा किया गया कि शब्द द्वारा बोध होता है तो परचतुष्टयकी नास्तिका बोध होता है पर यह ध्यानमें नही लाया गया कि वस्तुका स्वरूप है यह कि अपने चतुष्टयसे हुआ और परके चतुष्टयसे नहीं हुआ, इस शब्द द्वारा वाच्य तो वही पदार्थ है विधिरूप, जिसके विषयमें यह तर्कणा की गई कि पदार्थ अपने चतुष्टयसे तो अस्तिरूप है और परके चतुष्टयसे नास्तिरूप है यह वस्तुस्वरूप ध्यानमें न रखकर एक अन्यापोहकी सिद्धि करनेमें मति लग गयी । शब्दसे कोई विधिरूप भाव ही ज्ञात होता है । कहीं अन्यापोहरूप अभाव तुच्छाभाव ज्ञात नही हुआ करता ।

अनन्यापोह शब्दकी विधिरूपता—और भी सुनिये अनन्यापोह शब्दका भी कोई वाच्य कहोगे अनन्यापोह व्यावृत्ति तो अनन्यापोह व्यावृत्ति तो अनन्यापोहमें विधि रूपसे भिन्न कुछ वाच्य नही पाया जाता क्योंकि जहां दो प्रतिषेध होते हैं वहां विधिका ही निर्णय होता है । जैसे अश्व नहीं उसका नाम हुआ अनश्व लेकिन अनश्व नही, इसका अर्थ अश्व ही होता है । तो अन्यापोहका अर्थ अन्यकी व्यावृत्ति यह अर्थ हुआ और अन्यापोहका अर्थ अन्य व्यावृत्ति नही । तो जब दो प्रतिषेधोंसे विधिका ही निश्चय होता है, तब अन्यापोह शब्दका अर्थ क्या हुआ ? विधिरूप । तब किसी शब्दका वाच्य विधिरूप माननेपर ही ठीक बैठ सकता है । सर्वथा अपोह माननेपर

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। अन्यापोह शब्दका वाच्य अर्थ यहां और कौन हो सकता है जिसमें अन्यापोह नाम रखा जाय ? ऐसी कौन सी वस्तु है जिसका नाम अन्यापोह रखा जाय ? अन्यापोह शब्द कहकर किसी वस्तुका तो बोध होना चाहिए। शंकाकार कहता है कि विजातीयसे व्यावृत्त अर्थका आश्रय करके अनुभव आदिकके क्रमसे जो विकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है उस विकल्पज्ञानमें जो कुछ प्रतिभात होता है ज्ञानात्मभूत विजातीय व्यावृत्त अर्थाचारसे सुनिश्चित अर्थ प्रतिबिम्बरूप, उस विकल्पज्ञानमें अन्यापोह यह नाम पड़ता है। शंकाकारका यह अभिप्राय है कि जैसे अगोपोह कहा तो इसमें विजातीय हुये अश्व आदिक। उनसे व्यावृत्त अर्थ हुआ खण्ड मुण्ड आदिक स्वलक्षण, जिसे लोग गाय कहते हैं, उन अर्थोंका आश्रय करके अनुभव आदिक क्रमसे विकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है। वह इस प्रकार कि पहिले तो खण्ड मुण्ड आदिकका अनुभव हो जिसका नाम है निर्विकल्प दर्शन शुद्ध प्रत्यक्ष, उसके पश्चात् विकल्प वाला उद्बोध हुआ कि यह है उसके बाद संकेत कालमें ग्रहीत वाच्य वाचकका स्मरण हुआ, इस शब्दसे यह कहा जाता है इस प्रकार वाच्य वाचक शब्द का बोध हुआ। उससे अन्वित, युक्त वाच्य वाचक ऐसी योजना बनी, उसके बाद विकल्प हुआ कि यह गौ है सो इस विकल्प ज्ञानमें "अन्यापोह" यह नाम रखा जाता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि विजातीयसे व्यावृत्त पदार्थोंके अनुभव द्वारा जो शाब्दिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह ज्ञान उन ही प्रकारके अर्थका निश्चय कराता है। आ है तो इसमें किसी किस्मका विवाद ही नहीं। जिस शब्दको बोलकर जो अर्थ ज्ञात होता है वह अर्थ उससे भिन्न अन्य पदार्थोंका परिहार स्वरूप है ही। ऐसे अनुभव द्वारा जो कुछ ज्ञान हुआ वह सही ज्ञान है इसमें क्या विवाद है। किन्तु वह उस प्रकारके पारमार्थिक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला मानना चाहिये। क्योंकि जितने निश्चय होते हैं, ज्ञान होते हैं वे ग्रहण रूप हुआ करते हैं और विजातीय व्यावृत्ति तो समान परिणामरूप वस्तुके धर्मरूपसे व्यवस्थित है अर्थात् चाहे यह कहो कि गौमें अश्वादिककी व्यावृत्ति रूप पदार्थ है चाहे यह कहो अमुक स्थिर स्थूल आकार वाला पदार्थ। कुछ कहकर भी तो गौमें जो परिणाम पाये जाते हैं उनके समान परिणाम रूप धर्मोंका ही तो समावेश है। उस रूपसे व्यवस्थित होनेसे केवल नाम मात्रका ही भेद रहा। अन्यापोह कहकर भी गौ गौ रूपसे ही जाना और सीधा गौ शब्द कहकर गौ वाच्यको मानकर गौ रूप मानें इसमें अन्तर क्या आया ? केवल नाम मात्रका फर्क है।

प्रतिबिम्बकी अन्यापोहरूपतापर विचार – और जो कहीं यह कहा है शंकाकारने कि ज्ञानमें जो प्रतिबिम्ब है वह शब्दके द्वारा जन्यमान होता है। शब्दसे उस अर्थज्ञानकी उत्पत्ति हुई है इसलिये वह प्रतिबिम्ब तो शब्दका ही कार्य है। तो शब्दका यह अर्थ प्रतिबिम्ब कार्य है ऐसा कार्य कारणभाव बतानेका ही नाम वाच्य वाचक भाव है ऐसा जो कहा है वह अयुक्त है, क्योंकि विशिष्ट संकेतकी अपेक्षा रखने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाले शब्दसे बाह्य अर्थमें विज्ञानकी प्रवृत्तिकी प्रतीति होती है इसलिये बाह्य अर्थ ही उस शब्दका अर्थ है। शब्द बोलकर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानसे ऐसे ही अर्थ की प्रतिपत्ति होती है। ज्ञान होता है और फिर उसमें प्रवृत्ति होती है। तो समस्त लोक जानता है यह कि शब्द बोलते ही एकदम उस वस्तुका बोध हुआ अब उसके अन्दर दार्शनिकताकी गहरी छानका भेष बनाकर अन्य क्लिष्ट कल्पनायें करना यह तो एक सुगम मार्गसे बहिर्भूत बात है। इसी कारण यह भी अयुक्त बात है जो कहा कि प्रतिबिम्बका अन्यापोहपना तो मुख्य है और विजातीय व्यावृत्ति स्वलक्षणमें अन्य की व्यावृत्ति बनाना यह औपचारिक कथन है। अर्थात् अन्यापोहको ही जो प्रधानता देते हो वह भी अयुक्त है, अरे अन्यापोहको पहिले वाच्य तो सिद्ध कर लो फिर मुख्य उपचारकी कल्पना करो। अन्यापोह ही सिद्ध नहीं हो रहा है। हाँ तर्क करके उस वस्तुमें विजातीय अन्य धर्मोंका प्रतिषेध करना यह तो युक्त है। पर शब्द द्वारा वाच्य अर्थ नहीं होता, इससे शब्दका अर्थ अन्यापोह होता यह बात अयुक्त है।

शब्दज ज्ञानका विषय वस्तुभूत अर्थ – भैया ! सीधा यह मानना चाहिये कि प्रतिनियत शब्दसे प्रतिनियत अर्थमें प्राणियोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है इस कारण यह सिद्ध है कि शब्दज ज्ञान वस्तुभूत अर्थको विषय किया करता है और उसका प्रयोग भी इस प्रकार होगा कि जो परस्पर असंकीर्ण प्रवृत्ति वाले हैं वे वस्तुभूत अर्थ के विषयभूत हैं। जैसे श्रोत्रादिक ज्ञान। जैसे श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान बना उन ज्ञानोंमें परस्पर असंकीर्ण प्रवृत्ति है, वह भिन्न भिन्न रूपसे समझी जा रही है अथवा नेत्र इन्द्रियके द्वारा जिस पदार्थका भी बोध हुआ वह वस्तुभूत अर्थके सम्बन्धमें हुआ, क्योंकि असंकीर्ण प्रवृत्ति हो रही, अस्पष्ट प्रवृत्ति नहीं हो रही। गायका दूध दुह लावो, ऐसा कहनेपर कोई पत्थर नहीं दुहने लगता। गायके समीप जाता है, वहां दूध ढूंढता है तो यों जो विभिन्न प्रवृत्तियां होती हैं शब्द ज्ञान द्वारा उससे सिद्ध है कि शब्दके द्वारा वस्तुभूत अर्थ ही विषय किया गया। जितने भी शब्द बोले जाते हैं उन सब शब्दोंसे भिन्न भिन्न बुद्धि उत्पन्न होती है। कोई विशेषण वाले भी शब्द है। किसी ने बोला डंडी अर्थात् डंडा वाला तो डंडा उपाधिको लिए हुए जो पुरुष है उस पुरुषका उसे बोध हुआ। किसीने कहा विषाणी सींग वाला, तो सींग द्रव्य उपाधियुक्त वस्तुका बोध हुआ तो भिन्न–भिन्न प्रकारसे जब शब्दों द्वारा प्रत्यय हुआ करता है तो कैसे न शब्दको वस्तुभूत अर्थका विषय करने वाला माना जाय ? कोई शब्द गुणनिमित्तक हुआ करता है। जैसे कोई कहे सफेद, कोई कहे काला या सफेद चक्र घूम रहा है। यह काली गाड़ी चल रही है, तो सफेद और कालापन ये गुणबोधक चीजें हैं। भिन्न भिन्न प्रकारसे प्रत्यय और प्रवृत्तियां हो रही हैं। किसीने कहा गौ तो वह सामान्य विशेषात्मक वस्तुका ग्रहण कर रहा है। किसीने कहा इस आत्मामें ज्ञान है तो वहां स्वरूप सम्बन्धकी बात चल रही है। तो जब शब्द सुनकर ऐसे भिन्न–भिन्न प्रत्यय होते हैं तो उससे सिद्ध है कि शब्दसे सीधा उसीप्रकारका अर्थ जाना जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संकेतके आधारके शब्दमें शंकाकारकी आशंका – अब शंकाकार कहता है कि यह तो बतलावो कि ये ध्वनियां जिन्हें तुम कहते हो कि ये सीधे ही वस्तुभूत अर्थको बता देती है तो ये ध्वनियां संकेतकी हुई होकर अर्थको बताने वाली है या बिना संकेत किये हुए ये ध्वनियाँ अर्थकी प्रतिपादक हैं ? यदि कहोगे कि बिना संकेत किए हुए ये ध्वनियाँ अर्थका प्रतिपादन करती हैं तो इसमें तो बहुत बड़ा दोष किया गया। घट शब्द कहा और उससे पटका बोध हो जाना चाहिये। घट पटका वाचक बन जाय, क्योंकि अब तो बिना संकेत किये हुये ही शब्द अर्थके अभिधायक होने लगे। यदि कहो कि नहीं–संकेतकी हुई ध्वनियां ही अर्थका अभिधान करती हैं तो यह बतलावो कि उन ध्वनियोंका किस प्रकारके अर्थोंमें संकेत होता है ? क्या स्वलक्षणमें होता है अथवा जातिमें ध्वनियोंका संकेत होता है या स्वलक्षण व जातिके योगमें ध्वनियोंका संकेत होता है या जातिमान अर्थमें अथवा बुद्धिके आकारमें, किसमें ध्वनियों का संकेत होता है ? इस प्रकार ५ विकल्पोंमें ध्वनियोंके संकेतकी बात पूछी जा रही है। उनमेंसे यदि कहो कि स्वलक्षणमें ध्वनियोंका संकेत हुआ है तो उस विषयमें अब सुनो।

शङ्कामें स्वलक्षणके सम्बन्धमें शब्दका संकेत न बननेका कथन यहाँ शंकाकार कह रहा है कि ध्वनियोंका संकेत होकर फिर वह अर्थका प्रतिपादन करता है तो यह बतलावो कि ध्वनियोंका संकेत किसमें होता है ? स्वलक्षणमें तो कह नहीं सकते, क्योंकि संकेत व्यवहारके लिए किया जाता है तो व्यवहारके लिए संकेत किया जाता है। तो व्यवहारके लिए किए हुये संकेतके व्यवहार कालमें जो वस्तु रह रही हो उसमें तो संकेत युक्त हो सकता है पर जिस वस्तुमें संकेत किया वह तो व्यवहार कालसे पहिले ही नष्ट हो गयी, क्योंकि वस्तु क्षणिक है, क्षण क्षण मात्रमें नवीन नवीन होती है। तो यों वस्तु में जब संकेत किया तब तो व्यवहार न था और जब व्यवहार बना तब वस्तु नष्ट हो गयी। तब ध्वनियाँ स्वलक्षणमें संकेत कैसे करलें ? स्वलक्षण कभी भी संकेतके व्यवहारकालमें व्यापक नहीं होता। वस्तु क्षणभरकी हो, जब हो तब तो उसका निर्विकल्प दर्शन होता है। फिर निर्विकल्प दर्शनके बाद वासनावश जो तत्सम्बन्धमें प्रत्यय चलता है वह विकल्पक ज्ञान है। वहाँ व्यवहार बनता है। तो व्यवहारके कालमें स्वलक्षण रहता ही नहीं है इस कारण स्वलक्षणमें संकेत नहीं बन सकता और फिर शावलेय खण्डा मुण्डी आदिक व्यक्ति विशेषका देशादिकके भेदसे ये परस्पर अत्यन्त व्यावृत्त है इस प्रकार अन्वय उनमें नहीं बन सकता, क्योंकि जो जहाँ ही है वह वहाँ ही है। जो जिस समय है बस उस ही समय है। तो जब देश में भी क्षेत्रसे क्षेत्रान्तरमें कोई चीज उपलब्ध न हो सके उस कालमें भी जब कोई एक क्षणसे दूसरे क्षणमें व्यापक न हो सका तब फिर वहाँ संकेत कैसे बन सकता है। और फिर व्यक्तियाँ तो अनन्त हैं, उनमें संकेत सम्भव ही नहीं हो सकता।

स्वलक्षणमें शब्दसंकेत न बननेकी शङ्काका विवरण –शङ्काकार कह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा है अपने अपोहवादके समर्थनकी ध्वनियां शब्दादि अर्थका अभिधान करती हैं, तो संकेत बिना किया हो तो व्यवहार होता नहीं, संकेत होनेपर ही शब्दोंमें व्यवहार चलता है तब वह व्यवहार किसमें चलेगा ? संकेत किसमें होगा ? कोई स्वलक्षण तो यों न हो सका कि व्यवहारके सम्बन्धमें वह वस्तु नहीं रहती। यदि कहोगे कि विकल्प बुद्धिमें व्यक्तियोंका आरोप कर करके कि सब व्यक्तियां गो शब्दसे वाच्य हैं ऐसा आरोप करके संकेत बना लिया जायगा तो विकल्पसे आरोपित किए हुए अर्थके विषय में ही शब्दका संकेत हुआ, वास्तविक अर्थके सम्बन्धमें तो संकेत न हुआ, जिसका कि यह भाव होगा कि शब्दने किसी अन्यका जाना और फिर उसका व्यवहारमें आरोप किया गया। यदि कहो कि स्थिर एकरूप होनेसे जैसे हिमाचल आदिक पदार्थोंमें संकेत व्यवहारकालमें वह है ना तो संकेत उनमें सम्भव है ऐसा मानना भी युक्त नहीं है, क्योंकि वह हिमाचल आदिक पदार्थमें अपने अणुवोंका समूहरूप है सो उनमें अणुवों का प्रादुर्भावके बाद विनाश होता रहता है। अतः संकेत वहां भी समारोपित पदार्थों में विकल्पित मिथ्या पदार्थके संकेत आ गए। वस्तुतः संकेत परमार्थभूत पदार्थोंमें नहीं हो सकता। केवल एक कल्पनामें जच रहा है कि हिमाचल आदिक पर्वत स्थिर हैं। एक रूप हैं। वे वस्तुतः पदार्थ ही नहीं हैं। उनमें जो अनेक परमाणु पड़े हैं वे पदार्थ हैं।

वस्तुभूत स्वलक्षणमें शब्द संकेतकी असम्भवताकी शंकाका विवरण— शंकाकार कह रहा है कि यह बताओ कि शावलेय आदिक व्यक्तियोंमें जो समय किया जा रहा है, जो संकेत बनाये जा रहे हैं वे उत्पन्न पदार्थमें किये जा रहे हैं या अनुत्पन्नमें? यदि कहो कि अनुत्पन्नमें किये जाते तो यह बात अयुक्त है। तो असत् पदार्थ क्या किसी आधार बन सकता है ? नहीं। अतः अनुत्पन्न पदार्थोंमें संकेत की जानेकी बात कहना बिल्कुल अयुक्त है। वह संकेत उत्पन्न पदार्थोंमें भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि संकेत होते हैं अर्थके अनुभव और शब्दके समर्थनपूर्वक। अर्थात् जो शब्द बोला जा रहा है उस शब्दका जो स्मरण हो और अनुभवमें प्रत्यक्षमें आये कोई पदार्थ तब उसका संकेत बने,, किन्तु जब स्वभावका स्मरण करने लगे तब तो पदार्थका प्रध्वंस है। जब पदार्थका अनुभव था तब शब्दका स्मरण न था। तो शब्द स्मरण और अर्थानुभूति इन दोनोंका भिन्न भिन्न काल होनेसे संकेत व्यवस्था बन ही नहीं सकती। जितने भी स्वलक्षण क्षण हैं, त्रिकाल त्रिलोकवर्ती जितने भी पदार्थ समूह हैं उनकी सदृशता ऐक्य रूपमे आरोपित करके संकेतका विधान करने लगेंगे। ऐसी भी मशा सही नहीं हो सकती। इसमें तो स्वलक्षण क्षणोंकी अवाच्यता है। बुद्धिमें जो सदृशता आरोपित की है। उस सदृशताका आरोपित करनेका कथन किया। परमार्थभूत वस्तुका कथन तो नहीं किया जा सकता। और, यदि उस शब्द जन्य बुद्धिमें स्पष्ट प्रतिभास होता तब तो कह सकते थे कि इस शब्दके द्वारा यह वाच्य हुआ किन्तु ऐसा होता ही नहीं। जैसे इन्द्रिय बुद्धि स्पष्ट प्रतिभासरूप प्रतिभास

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में आती है इसी प्रकार शब्द बुद्धि स्पष्ट प्रतिभासमें नही आती। जो जिस कृत ज्ञान में प्रतिभासित नही होता वह उसका अर्थ नही है। जैसे रूप शब्द बोलकर रूप शब्द से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसमें रसका प्रतिभास नही होता। इससे सिद्ध है कि रूप शब्दका अर्थ रस नही है इसी प्रकार शब्दजन्य ज्ञानमें स्वलक्षणका प्रतिभास तो नही होता। इससे सिद्ध है कि शब्दका अर्थ स्वलक्षण नही है।

शब्दजन्य ज्ञानमें स्वलक्षणके न प्रतिभासनेकी शंकाका समर्थन—जब भी कुछ शब्द बोला उस शब्दमें शब्दका संकेत कब बने ? शब्दका स्मरण किया फिर पदार्थका ज्ञान हुआ तो इसके अन्तरमें पदार्थ तो कभीका नष्ट हो गया। अब संकेत किसका किया जाय, किन्तु हो रहा है संकेत तो इसका कारण यह है कि जितने भी संकेत हैं, संकेत व्यवहार है वे सब विकल्पमें होते, मायारूपमें होते। वस्तुभूत पदार्थमें संकेत नही किया जा सकता। वस्तुभूत तो स्वलक्षण है और उसके निर्विकल्प दर्शन ही सम्भव हैं। उसके बाद जो कुछ तर्कभूत है, विकल्पभूत है उसमें यह कल्पना जगाते हो। पदार्थ हुआ और होकर नष्ट हो गया, तो शब्दका जो संकेत बना उन सकेतोंसे जो कुछ जाना वह सब विकल्प ही न जाना, आरोपित जाना, परमार्थभूत स्वलक्षण नही जाना। तो अब उसके वाच्यके सम्बन्धमें तर्कणा द्वारा बात कही जायगी कि जाना गया स्वलक्षण तो मिट गया, उससे अन्यकी व्यावृत्ति जानी। तो यों संकेतसे अर्थका प्रत्यय नही हो पाता किन्तु विकल्प ज्ञान उससे बनता है। निर्विकल्प दर्शन ही परमार्थभूत वस्तुको कहते हैं। विकल्पक ज्ञान तो मायारूप कल्पित आनुमानिक पदार्थ को कहते हैं। शब्द अर्थका अभिधायक है वह बात नही बनती किंतु शब्द अन्यापोहको कह रहा हैं यही ठीक बैठता है। ऐसा क्षणिक सिद्धान्तवादी अन्यापोहके समर्थनमें अपनी युक्तियाँ देकर सिद्धकर रहा है कि जब परमार्थभूत स्वलक्षणमें संकेत ही नही बन सकता तो फिर यह कहना कैसे युक्त हो सकता है कि शब्द अर्थका वाचक है ? देखिये यहाँ स्वलक्षणमें शब्द संकेतके अभावको बात कही जा रही है शब्द ज्ञानमें स्वलक्षणका रूप नही आता और एक वस्तुमें दो रूप आ नही सकते कि स्पष्टपना भी हो और अस्पष्टपना भी हो, और फिर उसमेंसे शब्दों द्वारा वास्तविकके अस्पष्टपना वाच्य बन जाय यह नही हो सकता क्योंकि एक रूपमें दो धर्मोंका विरोध है इस कारण स्वलक्षणमें तो शब्दका वास्तविक संकेत नही बनता।

जातिमें, स्वलक्षण व जातिके योगमें तथा जातिमान अर्थमें भी संकेत की अशक्यताकी शंका—जातिमें भी शब्दका सकेत नही बन सकता, क्योंकि यदि क्षणिक है तो स्वलक्षणकी तरह उसमें भी अन्वय नही रह सकता। फिर संकेतका कोई फल ही न रहा। जैसे क्षणिकमें स्वलक्षणमें संकेत कालमें तो अर्थ नही और संकेत कालके बाद होता है स्मरण उसके बाद होगा संकेतसे अर्थका ग्रहण तो संकेत से जैसे परमार्थभूत स्वलक्षण नही जाना जा सकता है क्योंकि स्वलक्षण तो होते ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नष्ट हो गया था इसी प्रकार जाति भी क्षणिक है। तो जिस कालमें जाति निष्पन्न है उस कालमें तो उसका अनुभव हुआ और उसके बाद संकेत हुआ फिर संकेत स्मरण पूर्वक जब व्यवहारका समय आ गया उससे पहिले ही जाति नष्ट हो गयी तो जाति में संकेत नही बन सकता। यदि जातिको नित्य मानते हो तो क्रमसे उसमें ज्ञानकी उत्पादकता नही बन सकती. क्योंकि जो नित्य है, एक स्वभावरूप है उसमें परकी अपेक्षा असम्भव है, इस कारण जातिमें भी शब्दका संकेत नही बन सकता। शंकाकार कह रहा है कि जैसे शब्दका संकेत स्वलक्षणमें और जातिमें नही बना इसी तरह स्वलक्षण और जातिके योगमें याने सम्बन्धमें भी संकेत नही बन सकता, क्योंकि स्वलक्षण और जातिमें सम्बन्ध क्या होगा ? समवाय सम्बन्ध अथवा संयोग सम्बन्ध या तादात्म्य सम्बन्ध ? सो ये तीन प्रकारके सम्बन्ध स्वलक्षण और जातिमें बन नही सकते। जिस प्रकार स्वलक्षण और जातिके सम्बन्धमें संकेत नही बनता तो फिर जातिमान जो अर्थ है वह कुछ हो नही सकता, क्योंकि जातिका और अर्थका याने स्वलक्षणका कोई सम्बन्ध ही न रहा तब फिर उसमें संकेत कैसे हो सकता है ?

बुद्ध्याकारमें शब्दसंकेतकी अशक्यताकी शङ्का—अब ५ वें विकल्पकी बात पूछी जा रही है बुद्ध्याकारमें अर्थात् अर्थप्रतिबिम्बोंमें क्या शब्दका संकेत हो सकता है। बुद्ध्याकारमें भी शब्दका संकेत नही बन सकता क्योंकि बुद्ध्याकार तो बुद्धिके तादात्म्यरूपसे रहता है। तो वह अन्य बुद्धि प्रतिपाद्य अर्थको नही ले जासकती है क्योंकि बुद्ध्याकार तो बुद्धिमें ही तादात्म्यरूपसे रह गया। अब वह अन्य व्यावृत्ति बुद्धिका कैसे बन जायगा ? इसी विकल्पके सम्बन्धमें और भी सुनो ! किसी विवक्षित शब्दसे अर्थक्रिया चाहने वाला, अपने प्रयोजनकी सिद्धि चाहने वाला पुरुष अर्थक्रियामें समर्थ पदार्थोंको जानकर लगेगा ना, ऐसा जो लोग मानते हैं उन व्यवहारी जनोंने शब्दोंका नियोग किया। कहीं व्यसनी होनेके कारण शब्दोंका नियोग किया, कहीं व्यसनी होनेके कारण शब्दोंका नियोगन किया, निष्प्रयोजन नही किया, पर ये विकल्प यह बुद्ध्याकार अर्थको, प्रयोजनवानको इष्ट कार्य करानेमें समर्थ नही है। जैसे जब ठंढ लग रही हो तो क्या उस बुद्ध्याकारके होनेसे ठंढका निवारण हो सकता है ? नही हो सकता। तो जहां अर्थक्रिया नही बनती वहां संकेत क्या ? और भी सुनो ! बुद्ध्याकारमें अर्थात् अर्थप्रतिबिम्बमें अर्थाकार प्रकाशमें शब्द संकेत माननेपर अपोहवाद ही सिद्ध हुआ, क्योंकि अपोहवादी याने क्षणिक सिद्धान्त मानने वाले भी बाह्यरूपसे बुद्ध्याकार मानते ही हैं और वे अन्यापोहरूप हैं, सो वह शब्दका अर्थ हो यह बात अभीष्ट ही है। और फिर शब्दसे यदि अर्थ विवक्षाका ज्ञान होता है अर्थात् आन्तरिक अर्थको कहनेकी इच्छाका यदि ज्ञापन होता है तो सही है। शब्द कारण है और वह अर्थ विवक्षा कार्य है तो कार्य होनेसे शब्द अर्थविवक्षाका ज्ञापन कर देगा। जैसे धूम अग्निको सिद्ध कर देती है क्योंकि धूम अग्निका कार्य है किन्तु शब्द सीधा किसी पदार्थका संकेत करे सो नही कर सकता। इस प्रकार शङ्काकारने ५ विकल्पोंमें यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध करना चाहा है कि शब्दका संकेत किसी भी प्रकार वस्तुमें नहीं बनता। शब्दका वाच्य तो अन्यापोह है।

शब्द संकेतके विषयका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका यह पूछना कि ये ध्वनियां संकेत युक्त होकर ही अर्थकी वाचक हैं या संकेत बिना ही अर्थके वाचक हैं सो उन दो पक्षोंमें यही पक्ष युक्त है कि ध्वनियाँ संकेत युक्त होकर ही पदार्थकी वाचक होती हैं, और वह संकेत सामान्यविशेषात्मक में कहा जाता है। तब यह विकल्प उठाना कि क्या संकेत स्वलक्षणमें होता या जाति में होता अथवा स्वलक्षण एवं जातिके सम्बन्धमें होता अथवा जातिमान अर्थमें होता या बुद्धयाकारमें होता, यों विकल्प उठाकर शब्दके संकेतका निराकरण करना युक्त नहीं है। शब्दका संकेत सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें हुआ करता है। जिसमें संकेत किया जाता है ऐसा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ वास्तविक है और वह संकेत एवं व्यवहार कालमें व्यापक है, यह बात प्रमाण सिद्ध है। ये सामान्यविशेष धर्म वस्तुमें तादात्म्यरूपसे पाये जाते हैं। ये सब बातें प्रत्यक्षसे प्रसिद्ध हैं। किसी भी वस्तुको निरखकर उस वस्तुके समान अन्य वस्तुवोंका भी बोध किया जाता है और प्रयोजन वशसे असाधारण व्यक्तित्व देखकर कल्पनामें एकका ही बोध किया जाता है। किसी भी पदार्थके निरखनेपर सामान्य और विशेष दो प्रकारके प्रत्यय हो सकते हैं। यों सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें शब्दका संकेत होता है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें शब्दका संकेत होता है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ नित्यानित्यात्मक हुआ करता है वहाँ यह शंका नहीं उठायी जा सकती कि यदि पदार्थ अनित्य है तो उसमें संकेत नहीं बन सकता। यदि नित्य है तो क्रमसे ज्ञानकी उत्पादकता नहीं बन सकता। यदि नित्य है तो क्रमसे ज्ञानकी उत्पादकता नहीं बन सकती। ये दोनों विकल्प व्यर्थ हैं क्योंकि पदार्थ नित्यानित्यात्मक हुआ करते हैं। न सर्वथा नित्य हैं न सर्वथा अनित्य। और, फिर पदार्थ ज्ञानके उत्पादक नहीं होते, पदार्थ ज्ञानके विषयभूत एक सामग्री है।

सदृशपरिणामधर्मके कारण नाना व्यक्तियोंमें भी शब्दसंकेतकी संभवता—यहां यह भी नहीं कह सकते कि जब पदार्थ याने ये व्यक्तियां अनन्त हैं और व्यवहार कालमें उन अनन्त व्यक्तियोंका अनुगम नहीं होता। तब फिर इस शब्दका यह अर्थ है इस तरहका संकेत असम्भव है। यह बात यों युक्त नहीं कि समान परिणमनकी अपेक्षासे देखा जाय तो उन व्यक्तियोंका तर्क नामक प्रमाणसे प्रतिभास होता है। तब उन व्यक्तियोंमें संकेत बन जाता है। यदि सदृश परिणामकी बात और तर्क नामक प्रमाणकी बात नहीं मानते तो अनुमानकी प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि अनुमानमें भी साध्य और साधन व्यक्ति अनन्त हैं उन शब्दोंका अनुगम बन नहीं सकता तब फिर उनमें अविनाभाव कैसे बनाया जा सकता है? यदि कहो कि उनमें अविनाभाव सम्बन्ध अन्य व्यावृत्तिसे जान लिया जायगा तो यह भी बात अयुक्त है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि अन्य व्यावृत्तिमें सदृश परिणाम नही मानते हो या हो नही सकता है तो अन्य व्यावृत्ति भी नही बन सकती। सदृश्य परिणाम माने बिना अन्य व्यावृत्तिका भी तो परिज्ञान नही हो सकता। ऐसा भो नही कह सकते कि सामान्य विकल्पकी उत्पत्ति करने वाले असमान भी पदार्थोंमें विसदृश अर्थकी प्रतीति मात्रसे सदृश व्यवहारमें सहयोग मिलता है, यह बात यों युक्त नही है कि ऐसा माननेपर फिर नील आदिक विशेषणोंका अभाव हो चुकेगा। कैसे ? जैसे कि खण्ड मुण्ड आदिक पदार्थ परमार्थसे असदृश होनेपर भी यदिसामान्य विकल्पके उत्पादक अनुभवके हेतु बनते हैं और सदृश्य व्यवहारके पात्र वे पदार्थ होते हैं तो उसी प्रकार स्वरूपसे अनील आदिक स्वभाव होनेपर भी नील आदिक विकल्पके उत्पादक अनुभवमें निमित्त होनेके कारण नीलादिक व्यवहार बन बैठेगा। फिर वास्तविक नीलादिक विशेषण ही क्या रहे ?

सदृशपरिणाम न माननेपर अन्यव्यावृत्तिकी भी असिद्धि—सीधी बात यह है कि जब पदार्थोंमें सदृश परिणाम नही मानते तो ये पदार्थ सजातीय हैं ये विजातीय हैं। प्रथम तो यह व्यवस्था नही बनती। गौ गौ ये शब्द सजातीय हैं। अश्व, महिष आदि विजातीय हैं। इनका परिज्ञान तब होता जब कि सदृश परिणाम माना जाता है। सो सदृश परिणाम माननेपर यह बोध भी होगा कि ये सब गायें हैं क्योंकि इन सबका स्थिर स्थूल आकार एक समान है और यह सदृशता जहां जहां न मिलेगी, वहां विजातीय मान लिया जायगा कि वहाँ यह गौ व्यावृत्ति है, तो सदृश परिणाम तो अन्य व्यावृत्ति सिद्ध करनेके लिए भी मानना आवश्यक है। देखो, सदृश परिणाम होता है तभी तो अन्वय दृष्टान्त बनेगा और वहां तर्क नामक प्रमाणसे अविनाभाव जाना जायगा। तभी तो साधनसे साध्यका विज्ञान हो जाया करता है। यदि तर्क प्रमाण न मानकर व सदृश परिणाम न मानकर अन्य व्यावृत्तिसे ही साध्य साधनके सम्बन्धका ज्ञान मानते हो तब फिर यही सब बातें उन व्यक्तियोंके संकेतके सम्बन्धमें भी मान ली जायेंगी। जैसे अन्य व्यावृत्तिसे साध्य साधनका सम्बन्ध मान लिया जाता है इसी प्रकार अन्य व्यावृत्तिसे शब्द और अर्थोंका सम्बन्ध भी मान लिया जायगा और जब साध्य साधन व्यक्तियोंका सम्बन्ध जान लिया गया उसी प्रकार वस्तुमें शब्दका संकेत जान लिया गया, तब यह बात ठीक बैठ गई कि जिस वस्तुमें वास्तवमें कृत संकेत नहीं होते वे उसके वाचक नही होते। जैसे अश्व शब्दका संकेत सास्नादिमान गौ अर्थमें नही है तो अश्व शब्द सास्नादिमान गौका वाचक नही होता। तो इसी तरह परमार्थसे सभी वस्तुवोंमें सभी ध्वनियां सभी शब्द वाचक नहीं बनते। जो ध्वनि जिस अर्थके साथ अपना संकेत रखता है उस ध्वनिसे उस अर्थका ही बोध होता है। यों शब्दका पदार्थोंमें सीधा संकेत सम्भव है।

नित्यानित्यात्मक पदार्थोंमें शब्दसंकेत होनेके कारण अनेक प्रश्नोंका सुगम समाधान—शङ्काकारने जो यह कहा कि हिमाचल आदिक जो स्थिर पदार्थ हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें जो एक एक करके अनेक परमाणु हैं वे परमार्थभूत वस्तु हैं और वे क्षणिक हैं। इस कारणसे इन स्थिर पदार्थोंका भी संकेत नहीं बन सकता। यह कहना शङ्काकार का अयुक्त है क्योंकि बाहरमें और अध्यात्ममें भी सर्वथा क्षणिक कुछ भी नहीं माना गया है। जो भी वस्तु होती है वह नित्यानित्यात्मक होती है। न सर्वथा नित्य है कुछ न सर्वथा अनित्य है। तो उसके प्रत्यक्षरूप जो हिमाचल आदिक पर्वत हैं वे भी न सर्वथा नित्य हैं न अनित्य। सभी पदार्थ नित्यानित्यात्मक होते हैं और सब उनमें संकेत बनानेका कुछ भी विरोध नहीं है और जो शङ्काकारने यह कहा कि क्या उत्पन्न पदार्थमें संकेत होता है या अनुत्पन्न पदार्थमें ? क्षणिकवादके सिद्धान्तके अनुसार कुछ युक्तियां देकर इन दोनों विकल्पोंका खण्डन करना चाहा है, लेकिन सभी जन स्पष्टतया जानते हैं कि उत्पन्न पदार्थोंमें ही संकेत सम्भव है। पदार्थ उत्पन्न होकर तुरन्त नष्ट नहीं हुआ करता, जिससे यह शङ्का की जाय कि उत्पन्न होकर जब पदार्थ नष्ट हो गया तो पहिले हुआ अनुभव, बादमें हुआ विकल्प, इसके बाद बना शब्दसंकेत फिर हुआ उसका स्मरण, तब जाकर व्यवहार बनता है। तो उतने समय पहिले तो पदार्थ ही उत्पन्न होकर नष्ट हो गया अब संकेत कहां है ? यह कहना यों अयुक्त है कि पदार्थ नित्यानित्यात्मक होते हैं और मानो पर्यायसे उत्पन्न हुये पदार्थोंमें ही संकेत बनाया जाता है। इससे शब्द सीधा अर्थका प्रतिपादक है और इसी रूपसे शीघ्र शीघ्र शब्द बोलनेपर भी अर्थका अवबोध होता है और लोग शब्द बोलकर शीघ्र ही अर्थमें प्रवृत्ति किया करते हैं। इससे शब्दका सीधा अर्थमें संकेत होना युक्त बात है।

शब्दका अभिधेय अर्थको माननेपर इन्द्रियसमूहकी विफलताकी शंका और उसका उत्तर - शङ्काकार कहता है कि शब्दका अर्थ तो अन्यापोह है, अन्यकी व्यावृत्ति ही शब्दका वाच्य है। यदि शब्दका वाच्य पदार्थ मान लोगे तो शब्दसे ही जब पदार्थका ज्ञान हो गया तो फिर इन इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके सम्बन्धकी जरूरत ही क्या रही ? फिर इन्द्रियोंका समुदाय विफल हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि शब्दसे तो पदार्थका अस्पष्ट आकारमें ज्ञान होता है तब उसही पदार्थका स्पष्ट आकारमें ज्ञान करनेके लिए विशिष्ट इंद्रियज्ञान उत्पन्न हुआ करता है इस कारण इन्द्रियोंके समुदाय की विफलता नहीं हुती। किसी एक पदार्थमें पहिले अस्पष्टता झलके पीछे स्पष्टता झलके यह तो होता ही रहता है क्योंकि ऐसा होनेमें सामग्री भेद कारण है। जब अस्पष्ट आकार झलका तब कुछ निर्बल सामग्री थी अथवा कोई पदार्थ बड़ी दूर हो, वहांसे दीखे तो अस्पष्ट आकार झलकता है। कुछ निकट गए तो निकटता होना यह दूसरी सामग्री मिली तो वहां स्पष्ट आकार झलका। एक ही आकारमें स्पष्ट प्रतिभास अस्पष्ट प्रतिभास होना यह बराबर सम्भव है। सबके अनुभवकी बात है। जब कभी चल रहे हैं तो बड़ी दूरके पेड़ अस्पष्ट प्रतिभासित होते हैं। कुछ निकट पहुँचनेपर उनमें स्पष्ट प्रतिभास होता है। तो इसी प्रकार जब शाब्दिक ज्ञान हुआ तो अस्पष्ट आकार आया, जब अन्य इंद्रियका विशेष उपयोग किया तब उसमें स्पष्ट आकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आया, इस कारण यह कहना अयुक्त है कि शब्द यदि अर्थको कहने लगे, शब्दके द्वारा यदि प्रतिपाद्य अर्थ हो जाय तो जब शब्दसे साक्षात् अर्थका ज्ञान हो गया तो फिर चक्षु आदिक इंद्रियकी विफलता हो जायगी। सो विफलता नहीं होती।

पदार्थके अभावमें भी शब्द होनेके कारण शब्दकी अर्थानभिधायकता का प्रश्न और उसका उत्तर अब शंकाकार कहता है कि पदार्थ नहीं भी है अथवा जो अतीत और भविष्यकी बात है सो अभी पदार्थ असत् है तो भी शब्दकी प्रवृत्ति होती है इस कारण शब्द अर्थका अभिधायक नहीं है क्योंकि अर्थ है ही नहीं, और शब्द हो रहा है इससे शब्दका वाच्य पदार्थ नहीं हुआ। अन्यापोह हुआ। उत्तर मे कहते हैं कि यह बात कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिस पदार्थके सम्बन्धमें शब्द बोले जायेंगे वह पदार्थ नहीं है यहां कहीं। दूर रखा है अथवा अतीतकालमें हुआ है। भविष्यकालमें होगा। यदि नहीं हुआ वर्तमानमें तो भी वह अपने समयमें तो है। जैसे श्र रामचन्द्र जी शब्द बोला तो राम भगवान यद्यपि आजसे लाखों वर्ष पहिले हुए थे, वे इस समय नहीं हैं, पर उनके सम्बन्धमें कहा जा रहा है ऐसा तो शब्दका ज्ञान हो रहा। तो शब्द बोलनेसे जिस अर्थको कहा गया है यह अभी नहीं भी है तो भी वह पदार्थ अपने कालमें तो है। अन्यथा अतीतकालकी कोई चर्चा ही नहीं कर सकता क्योंकि चर्चा होगी शब्दों द्वारा और अतीत कालकी बात कहता है तो वह पदार्थ है तो वह पदार्थ है कहां अब ? तो अतीत भविष्यकी कोई बात नहीं कही जा सकती तब फिर व्यवहार ही क्या रहा। व्यवहारकी परिपूर्णता तब बनती है जब अतीत वर्तमान भविष्यत सबका उस वचनालापसे सम्बन्ध रहता है। तो पदार्थ वर्तमान काल में नहीं भी है जब कि शब्दका उच्चारण किया जा रहा है लेकिन वह अपने समयमें तो है अन्यथा अर्थात् पदार्थके वर्तमानमें अभाव होनेसे शब्द पदार्थका विषय करने वाला नहीं हो सकता, क्योंकि उस विषयका शब्दोच्चारण कालमें अभाव हो गया। क्षणिकवाद सिद्धान्तमें जब पदार्थका क्षण क्षणमें उत्पन्न होना, नष्ट होना मानते हैं तो जिस कालमें पदार्थ उत्पन्न हुआ उस कालमें तो शब्द नहीं बोला गया। अब शब्द बोलनेका समय आया उस पदार्थके बारेमें ज्यों कथनकी इच्छा उत्पन्न हुई तो वह पदार्थ न रहा। तो शब्दोच्चारणके समयमें पदार्थ कभी रह ही नहीं सकता। क्षणिक वाद सिद्धान्तमें तो इसका कभी योग ही नहीं जुड़ सकता तब उस प्रत्यक्षका विषय भूत कोई स्वलक्षण पदार्थ कैसे हो जायगा ? क्षणिकवाद सिद्धान्तमें पदार्थ उत्पन्न हुआ, उसके बाद प्रत्यक्षसे उसका निर्विकल्प दर्शन हुआ। फिर प्रत्यक्ष ज्ञानसे विकल्प की उत्पत्ति हुई, फिर उस विकल्प ज्ञानसे शब्दमें वाच्य वाचक भावका परिज्ञान हुआ तो इतने लम्बे समयमें जब कि शब्द किसीका वाचक बने तो उससे कितना ही पहिले वह पदार्थ नष्ट हो गया जिसके बारेमें कुछ शब्द कहे जाते हैं। और शब्दकी भी बात न लो, केवल एक प्रत्यक्ष ज्ञानकी ही बात लो कि क्षणिक वादमें जब वस्तु उत्पन्न हुई तो वह आत्माका करते ही नष्ट हो गई। द्वितीय क्षणमें किसी ज्ञानीने प्रत्यक्ष ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया तो प्रत्यक्ष ज्ञानके समय तो तुम्हारा स्वलक्षण क्षणिक निरन्वय निरंश पदार्थ ही नही रह पाता फिर प्रत्यक्षका विषय पदार्थ कैसे बनेगा ?

अविसंवादत्वकी प्रत्यक्षज्ञान और शब्दज्ञान दोनोंमें समानता—यदि कहो कि प्रत्यक्षका विषयभूत पदार्थ प्रत्यक्षके कालमें न रहा, मगर उस प्रत्यक्षसे प्रमाणान्तरकी प्रवृत्ति होनेरूप अविसम्वाद तो बराबर चलता है। उससे यह सिद्ध होता कि अविसम्वाद जिससे उत्पन्न हो वह ज्ञान प्रमाण है। और उसमें जो विषय किया वह सही है। क्षणिकवाद सिद्धान्तमें प्रत्यक्षज्ञानको निर्विकल्प कहा है। उसका स्वरूप अंदाज करनेके लिये कुछ ऐसा समझ लो कि जैसे जैनोंने दर्शनका स्वरूप माना है—दर्शन निर्विकल्प होता है। विकल्प न होकर केवल प्रतिभास मात्र होना यह दर्शनका विषय है। इस ही किस्मका क्षणिकवादियोंके यहां प्रत्यक्षज्ञानका विषय होता है सो पदार्थ उत्पन्न हुआ उसके बाद प्रत्यक्षज्ञान हुआ तो उस प्रत्यक्ष ज्ञानने अपने कालमें विषयको न पाया वह पदार्थ तो नष्ट हो चुका लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञानके बाद होता है सविकल्प ज्ञान अनुमान और उस विकल्पने ज्ञानमें अविसम्वाद पाया जा रहा है। प्रत्यक्ष ज्ञान अनुमान प्रमाणको उत्पन्न करता है इस कारण प्रमाण माना है तो इस तरह अविसम्वाद होनेसे यदि प्रत्यक्षमें कोई विषयता अनुभव करते हो तो शब्दजन्य ज्ञानमें भी प्रमाणान्तर की प्रवृत्ति रूप अविसम्वाद देखा जाता है ऐसे शब्दसे अर्थका प्रतिपादन होना भी अयुक्त नहीं है। जैसे कहीं ताजी भस्म दिखी तो झट अग्निका ज्ञान हो गया। अग्नि यद्यपि अतीत हो चुकी तो भी एक विशिष्ट भस्म अग्निका कार्यत्व उस कार्यके देखनेसे अनुमान उत्पन्न हुआ कि यहां अग्नि थी। क्योंकि उसका कार्यभूत विशिष्ट भस्म देखी जा रही है। तो इस अनुमानसे अग्नि थी इस ज्ञानमें सम्वाद पाया जा रहा है, और जैसे अमुक दिन अमुक समयपर चन्द्रग्रहण होगा, सूर्य ग्रहण होगा यों भविष्यकालके पदार्थके सम्बन्धमें भी प्रत्यक्ष प्रमाणका सम्वाद पाया जा रहा है। पत्रा वगैरह देखकर एकदम निर्णयके साथ कहते हैं ना कि अमुक दिन इतने बजे सूर्य ग्रहण पड़ेगा अथवा अमुक दिन इतने बजे चन्द्र ग्रहण पड़ेगा। और, जो बात कहा पहिलेसे वही बात समयपर नजर आती है तो इससे यह सिद्ध हुआ कि शब्दके उच्चारणके समयमें पदार्थ न हो तो भी शब्द उस पदार्थका बोधक होता है। जिस पुरुषने शब्दमें अर्थका संकेत ग्रहण किया है वह पदार्थ चाहे अब हो अथवा आगे हो शब्द और अर्थका संकेत समझने वाला पुरुष तो शब्द सुनकर उस अर्थका ज्ञान कर ही लेगा। यदि कहो कि शब्दजन्य ज्ञानमें कभी कभी विसम्वाद भी देखा जाता यही अर्थ हैं कि नहीं, इस कारण अप्रमाण है। तो भाई बात यह है कि शब्द जन्य ज्ञानमें यदि कहीं अप्रमाणता नजर आये तो इसका अर्थ यह नहीं है कि सब जगह सदा उसमें अप्रमाणता मान ली जाय। नहीं तो कभी कभी प्रत्यक्ष ज्ञानमें भी विसम्वाद देखा जाता है तो कहीं प्रत्यक्ष ज्ञानमें विवाद पाया जानेसे यह तो नहीं हो जाता कि सभी जगह प्रत्यक्ष ज्ञान अप्रमाण हो जाय। यही बात इन सब ज्ञानोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी है। यहां शब्द जिस अर्थका प्रतिपादन करता है। कदाचित विसम्वाद हो जाय तो कहीं हो गया इसके मायने यह नही कि उस शब्दमें प्रमाणता सब जगह रहे।

एक ही अर्थमें स्पष्टास्पष्टत्व प्रतिभास भेदका कारण सामग्रीभेद— अब यह निर्णय हुआ ना कि एक ही पदार्थमें शब्दका जो बोध हुआ वह अस्पष्ट हुआ पीछे चक्षु आदिक इन्द्रियसे जो बोध हुआ वह स्पष्ट हुआ तब यह कहना तुम्हारा अयुक्त है कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ अन्य ही पदार्थ होता है और शब्दका विषयभूत कुछ अन्य ही पदार्थ हुआ करता है और यह भी कहना अयुक्त है कि तभी तो अंधा पुरुष शब्दसे कुछ जानता है मगर प्रत्यक्ष देख नही सकता और यह भी देखा जा रहा है कि अग्निका शरीरमें सम्बन्ध होनेसे जला हुआ पुरुष जिस दाहको समझता है उस दाहको क्या दाह शब्दके सुनने वाला व्यक्ति समझ सकता है? दाह शब्द बोलनेसे क्या उस तरहका ज्ञान हो जायगा जिस तरहका ज्ञान अग्निके हाथपर धर देनेसे होगा? नही हो सकता। तो इससे सिद्ध है कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ और है और शब्द द्वारा विषयभूत कुछ और है ऐसा जो शंकाकार कहता था वह बात सही नही है? क्योंकि पदार्थ में जो इस तरहके प्रतिभास भेद पा रहे हैं कि कोई स्पष्ट समझमें आ रहे कोई अस्पष्ट समझमें आ रहे तो यह सामग्रीके भेदसे भेद है, परन्तु पदार्थोंके भेदसे भेद नही है। कोई पदार्थ बहुत दूर है उसका ज्ञान अस्पष्ट होता, कुछ निकट जानेपर वही पदार्थ स्पष्ट हो गया। तो पहिले जो अस्पष्ट ज्ञान हो रहा और अब जो स्पष्ट ज्ञान हुआ है तो इन दोनोंका विषयभूत वही पदार्थ है या अन्य अन्य? वही पदार्थ है। स्पष्ट और अस्पष्टके जो ज्ञान चल रहे थे वे सामग्रीके भेदसे चल रहे थे। दूर होनेपर अस्पष्ट ज्ञान था निकट होनेसे स्पष्ट ज्ञान हो गया। जितने भी परिणमन होते हैं ज्ञान होते हैं केवल शब्दके ज्ञानकी ही बात नही, सभी ज्ञान सामान्य विशेषात्मक पदार्थका विषय करते हैं, इस कारण पदार्थोंमें भेदका अभाव है वही पदार्थ कभी अस्पष्ट ज्ञात होता कभी स्पष्ट ज्ञात होता। तो यों ही शब्द सुनकर जो तत्त्वका ज्ञान हुआ वह अस्पष्ट ज्ञान हुआ और नेत्रोंसे देखकर उस ही पदार्थका जो ज्ञान हुआ वह स्पष्ट ज्ञान हो गया तो शब्दज ज्ञानमें पदार्थका प्रतिभास बराबर सिद्ध है। इसी कारण शंकाकार ने जो यह कहा कि जो जिस कृत ज्ञानमें प्रतिभास नही होता वह उसका विषय नही है। उस अनुमानमें उनका हेतु असिद्ध है। देखो—शब्द जन्य ज्ञानमें सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रतिभासित होता, बल्कि इस प्रयोगके साथ बोलिये कि जो ज्ञान जिस पदार्थमें निर्णयको उत्पन्न करता है व्यवहार करता है विकल्प ज्ञान उत्पन्न करता है वह ज्ञान उसको विषय कर रहा है। जैसे सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें विकल्पोंसे उत्पन्न करता हुआ प्रत्यक्ष उस सामान्यविशेषात्मक पदार्थको विषय कर रहा है इसी प्रकार शब्द भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें व्यवहारको उत्पन्न करता है इस कारण शब्दका भी विषयभूत सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है। इस प्रयोगमें हेतु असिद्ध नही है क्योंकि वहिरङ्ग पदार्थ भी अश्व घट पट आदिक विषयमें और अन्तरङ्ग पदार्थ आत्मामें विषयमें शब्द

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जन्य व्यवहार उस ही प्रकारकी वस्तुमें सद्भाव पाया जा रहा बल्कि शंकाकार द्वारा कल्पित जो स्वलक्षण है, क्षणिक निरन्वय निरंश जिसका अनुभव न हो। केवल प्रतिभास हो वह है पदार्थ, तो ऐसा स्वलक्षण नामक पदार्थ न तो प्रत्यक्षसे प्रतिभात होता है और न अनुमान आदिकसे प्रतिभात होता है। उसका तो स्व न भी नहीं होता। सामान्य विशेषात्मक पदार्थका बराबर सर्वत्र प्रतिभास होता है।

शब्दका वाच्य अर्थको न माननेपर शङ्काकी वकालतमें फीकापन— शङ्काकारने जो पहिले यह कहा कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ और ही पदार्थ है, शब्दका विषयभूत कुछ और ही तत्त्व है। तो पहिले आप अपने बोले हुए पदोंको ही सिद्ध कर लीजिए। आप कह रहे हैं कि इंन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ और ही चीज है तो इस शब्दसे कई अर्थ कहा गया या नहीं ? इंद्रिय द्वारा गम्य कुछ अन्य ही है, तो कुछ अन्य ही है ऐसा कहनेमें कोई पदार्थ कहोगे या नहीं ? यदि कुछ न कहोगे तो फिर ये शब्द भी नहीं बोले जा सकते कि इंद्रिय ग्राह्य कुछ और ही है। यदि इन शब्दोंसे कोई बात ही न कहेंगे तो फिर इस छंदके अंशका यह कैसे ज्ञान हो सकेगा कि इंद्रिय द्वारा ग्राह्य पदार्थ कुछ भिन्न ही है। यदि कहो कि इस शब्दके द्वारा कोई पदार्थ कहा जाता है तो फिर सिद्ध हो गया कि शब्दसे पदार्थ कहा जाता है। शब्द पदार्थका वाचक होता है, इसीसे ही शब्दकी अर्थविषयता सिद्ध हो जाती है। फिर क्यों ऐसी प्रतिज्ञा किये फिरते हो कि शब्द पदार्थका वाचक नहीं है। यहाँ तो मान लो कितने ही घुमाव फेरसे शब्दका वाच्य अर्थ, किन्तु अन्यत्र न मानो, इसकी क्या व्यवस्था है ? अन्यापोह सिद्ध करनेके प्रसंगमें कई विडम्बना आती हैं तब उसका अनुसंधान हुआ। तो बीचमें तुम्हें शब्दका वाच्य कोई पदार्थ मानना ही पड़ता है। तब फिर क्यों न सभीजगह यह मान लें कि शब्द द्वारा अर्थ वाच्य हुआ करता है ? यदि कहो कि यह शब्द साक्षात इन्द्रिय द्वारा ग्राह्यको अविषय करता है याने इसका विषय साक्षात् इन्द्रियग्राह्य नहीं है तो परम्परासे इसका विषय इन्द्रियगोचर होता है कि नहीं ? यदि परम्परासे भी इन्द्रियगोचर नहीं है वह अर्थ तो साक्षात् विशेषण देना व्यर्थ है। और यदि परम्परासे पदार्थका बोध होता है तो चलो परम्परासे हो सही, अर्थात् पदार्थ जब उत्पन्न हुआ, उसके अनन्तर हुआ उसका प्रत्यक्ष। प्रत्यक्षसे हुआ विकल्प, विकल्पसे जाना वाच्य वाचक सम्बन्ध। उससे फिर स्मरण हुआ, तब जाकर पदार्थके शब्दके द्वारा यह कहा गया, यह जाना जाता है। यों बहुत बड़ी परम्परासे भी अर्थका ज्ञान मान लो तो यह बतलावो कि परम्परासे भी हुई वह अर्थकी प्रतीति जो शब्द जन्य है वह इन्द्रियज प्रतीतिके तुल्य है या इन्द्रियज प्रतीतिसे विलक्षण है ? यदि कहो कि परम्परामें जो शब्द द्वारा अर्थका बोध होता है वह इन्द्रियज प्रतीतिके समान ही है तब फिर यह कहना कि शब्दसे कुछ और ही जाना जाता, इन्द्रियसे कुछ और ही जाना जाता वह खण्डित हो जाता है। क्योंकि शब्दसे और परम्परा बढ़ाकर भी जो अर्थ ज्ञान होता है वह अर्थका ज्ञान इन्द्रियज ज्ञानके समान माना है। यदि कहो कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शब्दसे परम्परा रखकर जो अर्थका ज्ञान होता है वह इन्द्रियज ज्ञानसे विलक्षण है तो कहते हैं कि रहो विलक्षण लेकिन ऐसी प्रतीतिकी विलक्षणता होना पदार्थ भेदको सिद्ध नहीं करता। जिस शब्दका जो कुछ ज्ञान किया अमुक देश इस जगह है, इस तरह है. इससे जो बोध हुआ और उस ही देशको देखने गया तब जो उस देशका बोध हुआ तो इन दोनों भेदोंमें प्रतिभास भेद तो है ही। शब्दसे जो जाना वह अस्पष्ट जाना और आँखोंसे चलकर जो देखा वह स्पष्ट देखा। लेकिन देखा जाता तो उस ही पदार्थको। प्रतीतिभेद विषयभेदका द्योतक नहीं है किन्तु सामग्री भेदका द्योतक है, एक भी पदार्थमें स्पष्ट और अस्पष्ट दोनों प्रकारके बोध होते हैं।

शब्दके द्वारा अर्थकी वाच्यता होनेके तथ्यको छिपानेका असफल प्रयोग —अब शंकाकारके छलमें कहे हुए दाह शब्दका अर्थ पूछ रहे हैं। जो यह कहा शंकाकारने कि अग्निके सम्बन्धसे जला हुआ पुरुष दाहका कुछ और अर्थ समझता है और दाह शब्द सुनकरके दाहका कुछ और अर्थ समझता है यों कहो हो कि दाह शब्द सुनकर यदि कोई उसका अर्थ न समझे तो उसके हाथपर आग उठाकर धर दो तो वह झट समझ जायगा। तो दाह शब्द सुनकर भिन्न अर्थ जाना गया। दाह शब्दका और दाहका शरीरसे सम्बन्ध होनेपर दाह शब्दका कुछ और ही अर्थ समझा। यो जो तुम जो दाह दाह बोल रहे हो तो पहिले दाहका ही अर्थ बताओ। दाह मायने क्या? क्या दाह मायने अग्नि है या उष्णस्पर्श है या रूप विशेष है या फोड़ा है, या दाहका अर्थ दुःख है? कुछ भी अर्थ हो, शंकाकार कह रहा कि इन विकल्पोंसे आपको क्या सिद्धि मिलती है? चाहे अग्नि अर्थ हो चाहे फोड़ा अर्थ हो, इन विकल्पोंसे आप कहना क्या चाहते? उत्तरमें कहते कि इस अर्थके बीचमेंसे कोई भी अर्थ माना गया हो पर उससे इतना तो सिद्ध हो जाता कि शब्दसे अर्थका ज्ञान होता है, शब्द अर्थवान हुआ करता है शब्दका विषय पदार्थ नहीं होता यह बात तो असिद्ध हो जायगी। शंकाकार कहता है कि इस तरह तो दहनके सम्बन्धसे जैसे फोड़ा बन जाता है या दुःख उत्पन्न होता है वहाँ फोड़ा या दुःख दाह शब्द बोलने या सुननेसे भी क्यों नहीं हो जाता? क्योंकि अर्थकी प्रतीति वहाँ भी है। जैसे जहाँ अग्निका सम्बन्ध शरीरसे हो रहा है और अर्थकी प्रतीति है ऐसे ही यहाँ भी अर्थ प्रतीति है जहाँ केवल दाह शब्द सुनकर अग्नि अर्थका ज्ञान हो रहा है। तो जैसे अग्नि छू जानेसे फोड़ा जाना जाता है ऐसे ही अग्नि शब्द सुननेसे क्यों नहीं फोड़ा पैदा हो जाता? उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। फफोड़ासहित बन जाना शब्द जन्य ज्ञानका काम नहीं है। वह और सम्बन्धका काम है। अग्निके ज्ञान होनेसे कहीं फोड़ा कार्य नहीं बनता किन्तु अग्नि और दाहके सम्बन्धका काम है कि फोड़ा तैयार हो जाय। को न भी हुआ ज्ञान अग्निका कोई सो रहा है और उसके हाथपर आग धर दी जाय तो क्या वहां फोड़ा न बन जायगा। और कोई पुरुष दूरसे आँखोंसे देख रहा है अग्निको लेकिन वहाँ फोड़ा कहाँ होता? कोई मंत्र औषधिकी सामर्थ्यसे अग्निको छू भी रहा है तो भी फोड़ा नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता । इससे शब्द ज्ञानका काम और है और फोड़ा होना यह तो अग्निके सम्बन्धका काम है । एक ही पदार्थमें स्पष्ट और अस्पष्ट प्रतिभास होते हैं यह खण्डित नही हो सकता । प्रतिभास भेद होनेका कारण सामग्री भेद है, न कि भिन्न भिन्न पदार्थका होना । इससे सीधा मानना चाहिये कि शब्दसे अर्थका बोध होता है अन्यापोहसे बोध नही होता ।

सामग्रीभेदसे एक ही पदार्थमें स्पष्ट व अस्पष्ट दोनों प्रतिभासकी सिद्धि—जिस अर्थका वाचक शब्द बोला गया है उस शब्दसे जो अर्थ जाना जाता है तब तो वह अस्पष्टरूप है और उसी पदार्थको जब आँखोंसे देखते हैं तब उसका स्पष्ट प्रतिभास भेद हुआ है वह पदार्थ भेदसे नही किन्तु सामग्री भेदसे हुआ है, इसी कारण शंकाकारका यह कहना अयुक्त है कि एक वस्तुमें दो रूप नही हो सकते । अर्थात् उसमें स्पष्टता भी हो और अस्पष्टता भी हो क्योंकि एक वस्तुमें दो रूपोंके होनेका विरोध है । यह बात यों अयुक्त है कि किसी एक ही अर्थको जब शब्दमात्रसे जाना तब वह अस्पष्ट होता है और उसीको नेत्रइन्द्रियसे जाना तो स्पष्ट होता है यों एक ही पदार्थमें अस्पष्ट और अस्पष्ट ये दोनों रूप बराबर रहते हैं और यह तो सर्वजनोंको विदित है कि दूरका पदार्थ जैसे वृक्ष देखा नेत्रइन्द्रियसे देखनेपर भी अस्पष्ट प्रतिभास होता है, बल्कि यह भी निर्णय नही हो पाता कि यह वृक्ष आमका है या जामुनका एक वृक्षाकार दिखता है । निकट पहुँचनेपर उस ही वृक्षका स्पष्ट प्रतिभास होता है और विशिष्ट निर्णय होता है तो एक पदार्थमें दो रूपोंका होना सम्भव है ।

शब्दोंको भाववाचक न माननेपर शास्त्रज्ञान, प्रवृत्ति धर्माचरण आदिके अभावका प्रसंग—अब कहते हैं कि शंकाकारने जो यह कहा था कि शब्दों के द्वारा अभाव ही कहा जाता है अर्थात् अपोह वाच्य नही होता । क्योंकि शब्दों द्वारा वाच्य अन्यापोह ही होता है यह कहना अयुक्त है । यदि शब्दों द्वारा पदार्थ वाच्य न हों और अपोह वाच्य हों तब फिर शब्दोंने क्या किया ? भावका तो प्रतिषेध कर लिया । सद्भावको तो शब्द बतायेंगे नही, फिर शब्दने किया क्या ? और फिर जब शब्द कुछ नही कर सकता, किसी वस्तुका संकेत भी न बता सका तब फिर जो आगम में नदी, देश, द्वीप, पर्वत, स्वर्ग, मोक्ष आदिकका वर्णन है उसकी प्रतिपत्ति कैसे होगी क्योंकि आप्तप्रणीत वाक्य भी आखिर शब्द हैं और शब्दोंका वाच्य पदार्थ माना नही । अपोह माना जा रहा तो नदी देश आदिकका भी कैसे ज्ञान होगा ? और मोक्षके साधनभूत क्रियावोंमें प्रवृत्ति भी कैसे हो सकेगी, क्योंकि शब्दके अब बिल्कुल अकिञ्चित्कर बताया । उसमें कुछ भी नही किया और फिर भी अर्थकी प्रतीति मानो, अनुष्ठानोंमें तपश्चरणमें, यज्ञ आदिकमें प्रवृत्ति मानो तब फिर सभी वाक्योंका सभी पदार्थोंमें क्यों नही प्रतिपत्ति और प्रवृत्ति हो जाती क्योंकि शब्द तो कुछ करते नहीं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो शब्द सुनकर किसी भी शब्दसे कुछ भी कार्य कर बैठना चाहिये।

शब्दको अकिञ्चित्कर माननेपर सत्य असत्यकी व्यवस्थाका अभाव–और भी देखिए ! शब्द कुछ न करे और फिर भी पदार्थका ज्ञान मान लिया जाय तो तो इससे सांचे और झूठेकी व्यवस्था भी नही बन सकती, क्योंकि सत्य क्या है असत्य क्या है ? इसकी प्रतिपत्ति न हो सकी। और जब सत्य असत्यकी व्यवस्था न बनी तो जो सत् है वह सबका सब नित्य है क्योंकि क्षणिक होनेमें न क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती न एक साथ अर्थक्रिया हो सकती ऐसा कोई अनुमान बनाता है और उस अनुमानको क्षणिकवादी असत्य कहता है तो क्षणिकवादियोंके इस अनुमानको भी कि 'जो सत् हैं वे सब क्षणिक हैं, क्योंकि नित्यमें न क्रमसे अर्थक्रिया बनती न एक साथ अर्थक्रिया बनती" इस अनुमानको भी असत्य कह दिया जायगा। अथवा नित्यवादियोंके अनुमान को सत्य कह बैठें। अनित्यवादियोंके अनुमानको असत्य कह बैठे क्योंकि शब्दोंसे तो कुछ भी नही जाना और वहां शब्द सुनकर ज्ञान कर लिया जाता तो शब्दका और अर्थका सम्बन्ध ब बिना भी यदि अर्थज्ञान हो गया तब तो सत्य और झूठकी कोई व्यवस्था नहीं रह सकती, क्योंकि शब्दका तो पदार्थोंने रंचमात्र भी स्पर्श नही किया। अर्थात् शब्दोंका विषय तो पदार्थ माना नही जा रहा। यदि कहो कि क्षणिकवादियोंके द्वारा कहे गए अनुमान वचन तो किसी प्रकार परम्परासे अर्थका विषय करते हैं जैसे कि सबसे पहिले त्रैरूप्य साधनका दर्शन होता है उसके बाद सम्बन्धका स्मरण होता है, उसके बाद शब्दका प्रयोग होता है। यदि इस प्रकार किसी ढंगसे क्षणिकवादियोंके अनुमान वचन पदार्थको विषय कर लेते हैं तो उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कहनेपर तो फिर यह सिद्ध हो गया कि शब्द द्वारा फिर सर्वथा पदार्थ अवाच्य न कहलाया। देखो अभी शंकाकारके अनुमान वचन पदार्थोंको विषय करने लगे।

शब्दोंसे तत्त्वसिद्धि अङ्गीकार करके भी शब्दको भाववाचक न माननेपर आश्चर्य – देखिये ! इस बातको कौन मानेगा कि क्षणिकवाद सिद्धान्तके बड़े २ आचार्य अपने पक्षकी सचाई बतानेके लिए अन्य पक्षकी असत्यता दिखानेके लिए शास्त्रोंको तो रच रहे हैं और प्रतिज्ञा यह करते हैं कि वस्तु सर्वथा अनभिधेय है अर्थात् शब्दोंके द्वारा पदार्थ कहा नहीं जाता। तो इतने जो शास्त्र रच रहे हैं इन समस्त शास्त्रोंकी शब्दोंकी रचनाका क्या प्रयोजन है ? जब यह शब्द वस्तुको बताता ही नही क्योंकि सर्वथा वाच्य रहित शब्दके द्वारा शास्त्रका प्रणयन किया नहीं जा सकता। कोई कुछ निबंध लिखे, शास्त्र रचना करे तो उसमें कुछ तो सोचता ही है। तो जो सर्वथा अभिधेय रहित हो शब्द तो कुछ शब्द रचना ही न बन सकेगी। देखो— वचनों द्वारा की गई तत्त्व सिद्धको तो अंगीकार करते हैं ये अर्थात् वचनोंके द्वारा अपने सिद्धान्तकी सिद्धि पुष्टि तो कर रहे है, किन्तु पदार्थ शब्द द्वारा वाच्य है यह नही बताते। कितनी आश्चर्यकी बात है कि उन्हीं शब्दोंको रच रचकर अपने तत्त्व

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की सिद्धान्तकी सिद्धि करना चाह रहे और कह रहे हैं कि शब्द किसी पदार्थ का वाचक नही होता, यह तो महान आश्चर्यकी बात है शंकाकार कहता है कि वस्तुके दर्शनके वंशमें वे हेतु वचन उत्पन्न हुए हैं ऐसा वस्तुका सूचक है अर्थात् एक ऐसा सिलसिला होता है कि पहिले पदार्थका दर्शन होता उसके बाद विकल्पज्ञान होता फिर वाच्य वाचक भाव होता तब अर्थसंकेत बनता है। इस तरहसे जो सज्जन शब्दरचना करते हैं, शास्त्रवचन करते हैं तो उनके वचन निरर्थक नही होते। वे परम्परासे पदार्थका अभिधान कर देते हैं। उत्तरमें कहते कि यह बात तो जो क्षणिक वादी नही हैं उनके यहां भी घटित होती है, यह कैसे कहा जा सकता कि उनका ही वचन तो पदार्थके दर्शनके सिलसिलेमें उत्पन्न हुआ और दूसरेका वचन पदार्थके दर्शनके अन्वयसे नही उत्पन्न हुआ और यों कहेंगे तो दूसरे भी यों कहेंगे कि नहीं, उस साथ, उसका वचन वास्तविक दर्शनसे उत्पन्न हुआ, दूसरेका वचन नही हुआ। इससे यदि शब्दको सीधा अर्थका अभिधायक मान लिया जाय तो इसमें कोई आपत्ति नही।

शब्दका विषय विवक्षामात्र माननेपर समस्त शब्दज्ञानोंकी निर्विशेष प्रमाणताका प्रसङ्ग – और भी देखिये ! शंकाकारने समस्त वचनोंका विषय विवक्षा मात्र माना है। वचन पदार्थका प्रतिपादन नही करते किन्तु वचन कहने वालेकी इच्छाको जाहिर करते हैं। तो अब समस्त वचनोंका विषय विवक्षामात्र माना है तो वचन तो विवक्षामात्रको सूचन करके समाप्त हो गए। शब्दोंकी शब्दजन्य ज्ञानकी प्रमाणता तो इतनेमें ही आई कि शब्द विवक्षामात्रकी सूचना दे। इसके आगे बात न हो तो सारा शाब्दिक ज्ञान प्रमाण हो जायगा, क्योंकि दूसरे आगम भी प्रतिवादीके अभिप्रायको बताने वाले हैं। जब शब्दका इतना ही काम हुआ कि विवक्षाको बतादे। तो जैसे कोई वादी शब्द बोलता है और वह शब्द उसकी विवक्षाको बता देता है इतने ही मात्रसे वह प्रमाण बन गया तो प्रतिवादी भी जो शब्द बोलेगा वहां प्रतिवादियोंकी विवक्षा ज्ञात हो जायगी और शब्द प्रमाण हो जायगा। तो इस तरहसे जितने भी शब्दजन्य ज्ञान हैं वे सब प्रमाण हैं, फिर न कोई सिद्धान्त रहा न असिद्धान्त रहा।

शब्दका विवक्षाव्यभिचारित्व—अब दूसरी बात एक यह है कि जैसे शङ्काकारने यह बतलाया है कि शब्द अर्थके प्रतिपादक नही होते अर्थ मायने वस्तु। शब्द पदार्थको नही बताते क्योंकि पदार्थके न होनेपर भी शब्द हो जाते हैं और कभी जिस प्रकारका शब्द होता है उस प्रकारका शब्द है नही और शब्द हो जाता है, जो पदार्थव्यभिचार हो गया। सो जैसे शब्दोंको पदार्थका व्यभिचारी कहा इसी तरह विवक्षामें भी व्यभिचार देखा जाता है। जैसे कि शङ्काकार कह रहा कि शब्द तो विवक्षामात्रका विषय करता है। तो शब्दोंमें भी विवक्षा व्यभिचार पाया जाता है फिर शब्द विवक्षाको कैसे बता सकेंगे ? फिर शब्दका विषय विवक्षा भी न रहा। देखो जब कभी बोलते बोलते कोई नाम स्मरणमें नही आ रहा है या स्खलित होगया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तब कहना तो है देवदत्त और कह बैठने हैं जिनदत्त तो देखो ! विवक्षा कुछ और थी, कहना चाहिये था देवदत्तको और शब्द उठ गये जिनदत्तके. तो यों शब्दोंमें विवक्षा व्यभिचार पाया गया —तब शब्द विवक्षाके प्रतिपादक नही हो सकते। यदि कहो कि भली प्रकारसे निर्णय किया गया कार्य कारणको व्यभिचारित नही करते हैं तो यह नियम अर्थ विशेषके प्रतिपादकत्वके सम्बन्धमें भी लगा लेना चाहिये अर्थात् अच्छी तरहसे निर्णीत किया गया शब्द अर्थको व्यभिचरित नही करता और पदार्थ चाहे उपस्थित हो या न हो पर उस शब्दके द्वारा वही अर्थ जाना जाता है। ऐसा तो श्रोता समझ ही लेते। फिर पदार्थके साथ शब्दका व्यभिचार नही हुआ। सो यह मानना चाहिये कि शब्द पदार्थके वाचक होते हैं। जिस पदार्थमें जिस शब्दका संकेत सम्बन्ध किया गया है उस शब्दके द्वारा उस ही पदार्थका अविनाभाव होता है।

शब्दसे प्रतिपत्ति प्रवृत्ति आदि देखे जानेसे शब्दकी अर्थप्रतिपादकता की सिद्धि—अब और भी सुनिये कि शब्द विवक्षाका प्रतिपादन करते हैं यह भी युक्त नहीं हो सकता और विवक्षामें बसाये गए पदार्थका भी प्रतिपादक नही हो सकता क्योंकि विवक्षासे तो ज्ञान व प्राप्ति नही देखी गई। किन्तु शब्दसे बाह्य अर्थमें घट पट आदिककी प्रतिपत्ति प्रवृत्ति और प्राप्ति बराबर देखी गई है। जैसे कोई कहे कि घट लावो ! तो दूसरा समझ जाता है कि यह कहा गया है और झट घटके पास पहुंचता है और घट लाकर दे देता है। तो देखो उस शब्दसे बाह्य अर्थमें प्रतिपत्ति, प्रवृत्ति हुई, प्राप्ति हुई। इससे शब्द अर्थका वाचक है प्रत्यक्षकी तरह। जैसे कि प्रत्यक्षसे ज्ञाताने अपने उपयोग सामग्रीकी अपेक्षा करके प्रत्यक्षभूत अर्थको जान लिया। आंखें खोली, उपयोग लगाया, पदार्थको जान लिया। इसी प्रकार संकेत सामग्रीकी अपेक्षासे युक्त होकर शब्दसे शब्दार्थकी प्रतिपत्ति हुई, यह बात सभी मनुष्य जानते हैं। जिस शब्दका जिस अर्थमें संकेत समझ लिया है उस संकेतकी अपेक्षा रखकर उस शब्दके द्वारा अर्थ का ज्ञान सभी मनुष्य किया करते हैं। यदि इस तरह अर्थका ज्ञान न हो संकेतसामग्री की अपेक्षा रखकर शब्दसे पदार्थका ज्ञान न हो तो फिर शब्दसे बाह्य अर्थमें प्रतिपत्ति, प्रवृत्ति, प्राप्ति कुछ भी नही हो सकती। तो शब्द सुनकर जब हम अर्थका ज्ञान करते, उसमें प्रवृत्ति करते तो इससे बढ़कर और प्रमाण क्या है इस बातका कि शब्द अर्थ का प्रतिपादक है ?

शब्दसे प्रतिपत्ति प्रवृत्तिहोनेके विरोधमें शंका व उत्तर—शंकाकार कहता है कि पदार्थमें जो प्रवृत्ति हुई है सो शब्दने प्रवृत्ति नही करायी किन्तु चाहने वाले उस पदार्थमें चाह लगी हुई थी उस इच्छाके कारण उनकी प्रवृत्ति हुई है। तो उत्तरमें कहते हैं कि यों तो फिर प्रत्यक्ष आदिकमें भी अप्रवर्तकता हो जायगी। प्रत्यक्ष ज्ञानसे जो पुरुष पदार्थमें प्रवृत्ति करने लगता है वहां भी यह कह डालेंगे कि पदार्थमें प्रवृत्ति प्रत्यक्ष ज्ञानके कारण नही हुई किन्तु पदार्थकी अभिलाषा कर रहे थे वे मनुष्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सो उसकी जो उस पदार्थमें चाह लगी है इस चाहके कारण प्रवृत्ति हुई है। यदि कहो कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे ज्ञाता पुरुष परम्परासे प्रवृत्ति कर लेता है अर्थात् प्रत्यक्ष इस अभिलाषाको उत्पन्न करता है, फिर अभिलाषासे पदार्थोकी प्रवृत्ति हुई। तो देखो— पदार्थमें प्रवृत्तिका कारण प्रत्यक्षज्ञान ही तो हुआ उत्तरमें कहते हैं कि यह बात शब्दमें भी कही जा सकती है कि शब्द अभिलाषाको उत्पन्न करते हैं और अभिलाषासे फिर प्रवृत्ति बनती है क्योंकि जैसे परम्परया प्रवर्तकता प्रत्यक्षमें कहते हो उसी प्रकार परम्परया प्रवर्तकता शब्द विज्ञानमें भी सिद्ध होती है। इस कारण जो सीधा स्पष्ट सर्वजन जान ही रहे बिना समझाये कि शब्द बोलनेसे पदार्थका ज्ञान हो जाता है तो इस सुगमतत्त्वका क्यों लोप किया जा रहा है ?

शब्दोच्चारणमात्र विवक्षा माननेपर शब्दकी विवक्षानभिधायकता— और भी देखिये शंकाकारने जो यह कहा है कि शब्द तो विवक्षामात्रको विषय करता है। किसीने कोई शब्द बोला तो उस शब्दसे वक्ता यह जान गया कि इस पुरुषके कहनेकी यह इच्छा है। शब्दसे पदार्थ नहीं जाना गया। यों शब्द विवक्षाका प्रतिपादक है ऐसा कहने वाले शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि विवक्षा शब्दका अर्थ क्या है ? क्या शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्र करना ही विवक्षा कहलाता है या "इस शब्दसे इस अर्थको मैं कहता हूँ" इस प्रकारके अभिप्रायका नाम विवक्षा है। यदि कहो कि शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्रको विवक्षा कहते हैं और इस विवक्षाका शब्द प्रतिपादक होता है तो देखिये फिर तो वक्ता और श्रोता दोनोंके शास्त्रादिकमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि शब्दने कहा क्या ? शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्र बताया। शब्दमें कोई विशेषता तो नहीं आयी कि इस शब्दसे यह पदार्थ कहा गया है, इस शब्दसे यह बात कही गई है। ऐसी भिन्न भिन्न बातोंका बोध तो नहीं हो सकता। केवल शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्रको शब्दसे जाना गया है। तब फिर शास्त्र आदिकमें प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। ऐसा कोई होश वाला मनुष्य नहीं है, जो शब्द निमित्तक इच्छा मात्रको जाननेके लिये शास्त्रको, वचनोंको बनाये या शास्त्रको सुने। तब शब्दका वाच्य इतना ही समझें कि शब्दके उच्चारणकी इच्छा भर तो किया। कोई शास्त्रको ऐसा नहीं पढ़ता है कि शास्त्र बनाने वालेके शब्दोच्चारणकी इच्छा हुई यों समझें इस प्रयोजनसे कौन शास्त्र पढ़ता है और इस प्रयोजनसे कौन वक्ता बोलता है क्योंकि यदि इच्छामात्र ही विषय हैं तो अटपट भी कोई शब्द बोले और कोई व्यवस्थित कोई निबंध हो, दोनोंका अर्थ बराबर है क्योंकि शब्दका अर्थ तो इतना ही रहा कि इच्छा। तो जो अटपट बक रहा है उससे भी जाना गया कि इसके उच्चारणकी इच्छा है। और जिसने बड़े विवेक पूर्वक भी कोई युक्तिसे रचना की है तो उसके भी इतना ही जाना जायगा कि इसके शब्दोच्चारणकी इच्छा है। तो शब्दोच्चारणकी इच्छामात्र यदि विवक्षा है तो उससे कुछ भी प्रवृत्ति नहीं बन सकती, क्योंकि कुछ भी शब्द कोई बोल लेंगे उससे केवल एक यह अनुमान बनाना है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इसके कुछ बोलनेकी इच्छा भर है सो यह बात तो सब शब्दोंमें पायी जाती है। फिर न शास्त्रका कोई सिद्धान्त रहा, न पढ़ने वालोंका कोई प्रयोजन रहा। फिर तो सारी प्रवृत्तियोंका लोप हो जायगा। इससे विवक्षाका अर्थ शब्दोच्चारणकी इच्छा मात्र तो कहा नहीं जा सकता।

इस शब्दके द्वारा अमुक अर्थको कहता है इस अभिप्रायको ही विवक्षा माननेपर शब्दकी विवक्षाभिधायकताकी असिद्धि—यदि कहो कि इस शब्दसे मैं इस अर्थको कहता हूँ इस प्रकारके अभिप्रायका नाम विवक्षा है अर्थात् इसका इस तरहका अभिप्राय है क्योंकि उस प्रकारके अभिधायक शब्दका उच्चारण किया है यों कुछ कुछ अभिप्रायका ज्ञान कर लिया जाता है इसहीका नाम विवक्षा है और शब्द इस विवक्षाका वाचक है तो उत्तर देते है कि यह तो बात अयुक्त है क्योंकि इसमें व्यभिचार होता है। क्योंकि जो जो भी शब्द बोले उन-उन वक्ताओंका अभिप्राय कुछ होता है यह नियम नहीं है। जैसे तोता, मैना, पागल आदिक बहुतसे प्राणी अटपट वाक्य बोल देते हैं पर उनका अभिप्राय वैसा कुछ भी नहीं है। जो वचन बोलें उनके अनुरूप उनका अभिप्राय हो यह बात नहीं पायी जाती इस कारण यह भी कहना युक्त नहीं है कि इस शब्दके द्वारा मैं इस अर्थका प्रतिपादन करता हूँ। इस प्रकारके अभिप्रायका नाम विवक्षा है। इन पक्षियोंका तो कुछ अभिप्राय ही नहीं रहता है। दोहा भी रट लेते हैं ये तोता, मैना आदि किन्तु उनका अभिप्राय तो होता नहीं। उन्मत्त पुरुष जो चाहे वचन बोलते रहते हैं पर उनके वचनोंमें क्या अभिप्राय? वे अभिप्रायशून्य हैं तभी तो पागल हैं। तो यह नियम बनाना कि शब्द विवक्षाका प्रतिपादक है और विवक्षा नाम है अमुक शब्दके द्वारा मैं अमुक शब्दका प्रतिपादन करता हूँ ऐसा अभिप्राय यों जब विवक्षा का स्वरूप ही नहीं बन सकता, तो शब्द विवक्षामात्रको विषय करता है यह कहना कैसे युक्त हो सकता है? युक्त यही है कि शब्द अपने संकेतके अनुसार पदार्थका प्रतिपादन किया करते हैं

संकेतसापेक्ष या संकेतनिरपेक्ष शब्दको अभिप्रायवाचक कहनेमें शङ्काकारके इष्टसिद्धिका अभाव—शङ्काकारके सिद्धान्तसे शब्द विवक्षाका वाचक है और विवक्षाका अर्थ करते हैं वे यह कि इस शब्दके द्वारा इस अर्थको कहता हूं, इस प्रकारका अभिप्राय अर्थात् शब्दसे अभिप्रायका ज्ञान होता है ऐसा शङ्काकारका अभिमत है। इस विषयमें पूछा जा रहा है कि क्या संकेतकी अपेक्षा रखकर वाक्य उस प्रकारके अभिप्रायके गमक होते हैं। वाक्य कहो, वचन कहो, शब्द कहो। वचन अभिप्रायका द्योतन करने वाले हैं तो क्या वे वचन संकेतसहित होकर अभिप्रायके गमक हैं? यदि कहो कि संकेतकी अपेक्षा न रखकर वचन उस प्रकारके अभिप्रायको बता देता है अब तो फिर सभी वचनोंसे पदार्थोंकी प्रतिपत्तिका प्रसंग हो जायगा, क्योंकि वचनोंमें संकेतकी अपेक्षा तो रखी नहीं, तो सारे शब्द एक समान हो गए।

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें भिन्नता कुछ रही नही। तो सारे शब्दोंके समूह अर्थके प्रतिपादक बन जायेंगे। तब फिर कोई भी पुरुष किसी भी भाषासे अनभिज्ञ न रहेगा। शब्द बोलना सब जानते ही हैं। कुछ भी बोले और वे शब्द बिना संकेतके अभिप्रायको बताते हैं तब फिर सभी लोग सभी भाषाके विद्वान कहलाने लगेंगे। इससे यह बात तो नही बनती कि संकेतकी अपेक्षा किए बिना ही वचन उस प्रकारके अभिप्रायका गमक हो जाय। यदि कहो कि संकेतकी अपेक्षा रखकर वचन उस प्रकारके गमक होते है तब तो संकेत की अपेक्षा रखकर वे शब्द सीधे ही पदार्थके गमक क्यों नही हो जाते। जैसे संकेत सापेक्ष होकर शब्द अभिप्रायके बोधक होते हैं वैसे ही सापेक्ष होकर शब्द सीधे पदार्थ के ही बोधक क्यों नहीं हो जाते जिस पदार्थको कहनेकी वक्ता इच्छा रख रहा है। शब्द कही पदार्थसे डरता नही है जो डरके मारे सारे शब्द पदार्थोंमें साक्षात् न प्रवर्तें।

शब्दमें अर्थवाचकताकी मान्यतामें ही सुव्यवस्था– जो बात समस्त जनोंके चित्तमें सुगम प्रसिद्ध है उस बातको मना करके कल्पनायें करके अन्यापोह विवक्षा आदिक वाच्य बनाये जा रहे हैं इस श्रमसे क्या लाभ ? यदि कहोगे कि पदार्थ तो अनन्त हैं। उन अनन्त पदार्थोंमें संकेत कैसे किया जा सकता है ? सो संकेतकी अशक्यता होनेसे शब्दकी प्रवृत्ति पदार्थमें नही हो पाती और यह न्यायकी बात है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तो अभिप्रायमें भी लगा सकते हैं। अभिप्राय भी तो अनन्त होते हैं तब संकेत उन अभिप्रायोंको कैसे ग्रहण करेगा ? तब फिर शब्द अभिप्रायके भी गमक नही हो सकते हैं। इस तरह सामान्य विशेषात्मक स्वलक्षण पदार्थ को शब्दोंके द्वारा अनिर्देश्य कहना युक्त नही है। अर्थात् जो शंकाकारका यह अभिप्राय है कि शब्द द्वारा पदार्थ निर्दिष्ट नही होता किन्तु शब्द द्वारा अन्यापोह ही कहा जाता अथवा विवक्षा आदिक कहा जाता यह बात युक्त नही है किन्तु शब्द सीधा सामान्य विशेषात्मक पदार्थका गमक होता है। चौकी बोलनेसे तुरन्त लोग चौकीको समझ जाते हैं। शब्द अर्थके वाचक हैं इसमें कोई संदेह नही।

लक्षित अथवा अलक्षित वस्तुमें अनिर्देश्यत्व कथनकी असिद्धि—अब यह बतलावो जो यह कह रहे हो कि शब्द द्वारा पदार्थ अनिर्देश्य है ऐसा जो कह रहे हो याने वे पदार्थ शब्द द्वारा नही कहे जाते तो ऐसा बोलनेमें जिसको वह कह रहे हो तो उसे न समझकर अनिर्देश्य बतला रहे हो या उसे समझकर अनिर्देश्य बतला रहे हो ? शंकाकारने जो यह कहा है कि शब्द द्वारा वह पदार्थ वाच्य नही होता सो उसे न समझकर कह रहे हो कि वाच्य नही होता या समझकर कह रहे हो कि वाच्य नही होता जैसे कोई कहे कि यह घड़ा भला नही है तो जो भला नही है उसको समझो तो सही कि वह है फिर उसमें विशेषता लगाओ। तो जिसको अनिर्देश्य कह रहे हो उसको न समझकर कह रहे हो या समझकर कह रहे हो ? यदि कहो कि उसको न समझकर ही कह रहे हैं उसका प्रतिपादन किये बिना ही अनिर्देश्य शब्दसे कह रहे हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो इसमें बड़ा दोष आता है। तब तो घट पट आदिक अटपट सभी अनिर्देश्य हो जायेंगे। जब शब्द द्वारा किसीको न समझकर अनिर्देश्य बतलाने लगे तो न समझनेकी बात तो सर्वत्र समान है। फिर वहाँ अतिप्रसंग दोष हो जायगा। यदि कहो कि उसको समझ करके अनिर्देश्य कह रहे उसका प्रतिपाद्य करसे यह है, इसको अनिर्देश्य कहा जा रहा है, ऐसा प्रतिपादन करके अनिर्देश्य बताया जायगा तो इसमें स्ववचन विरोध आता है। पहिले तो शब्दके द्वारा स्वलक्षणका प्रतिपादन कर लिया फिर उसीका प्रतिषेध करते हो। अनिर्देश्य बतानेसे पहिले जो तत् शब्द द्वारा जिसका प्रयोग किया है उसका प्रतिपादन करके ही तो कह रहे हो। तो अनिर्देश्य रहा निर्देश्य हा निर्देश्य मायने बताया जाने योग्य याने वाच्य हो गया फिर अवाच्य अब कहाँ रहा, अनिर्देश्य तो रहा नहीं, हो तो गया निर्देश्य और फिर उसीका निषेध करते हो कि अनिर्देश्य है।

अनिर्देश्य शब्दसे कुछ निर्देश्य या कुछ अनिर्देश्य होनेके विकल्पोंसे अनिर्देश्यताका निराकरण— अब यह बतलावो कि अनिर्देश्य शब्दका भी कुछ अर्थ है कि नहीं। अनिर्देश्य शब्दके द्वारा भी स्वलक्षण यदि नहीं कहा गया तो फिर अनिर्देश्यपनेकी सिद्धि ही क्या होगी ? वह स्वलक्षण अनिर्देश्य है। अवाच्य है तो यह स्वलक्षण ऐसा कहकर कुछ समझा कि नहीं। समझा तो निर्देश्य हो गया। प्रतिपाद्य हो गया। फिर उसका निषेध करना कैसे सही बन सकता है ? और, और, भी जाने दो पर यह तो बतलावो कि यह पदार्थ अनिर्देश्य है तो अनिर्देश्य शब्दसे भी यह कुछ न कहा गया तो अनिर्देश्य क्या रहा ? कुछ तो ज्ञानमें आना चाहिये कि इस पदार्थका अनिर्देश्य कहा जा रहा है ? यदि कहो कि भ्रान्ति मात्रसे अनिर्देश्य अनिर्देश्यकी सिद्धि हा जाती है तो भ्रान्तिसे ही तो सिद्धि भई। वास्तवमें तो सिद्धि नहीं भई। परमार्थसे न अनिर्देश्य रहा, न असाधारण रहा। यदि कहो कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे निर्विकल्प ज्ञानसे अनिर्देश्य असाधारण स्वलक्षणकी प्रसिद्धि हो जायगी। तो यह भी तुम्हारा केवल सोचना मात्र है। क्योंकि प्रत्यक्षके द्वारा निर्देश योग्य सामान्य विशेषात्मक पदार्थका ही साक्षात्कार होता है। तो इससे स्पष्ट सिद्ध है कि शब्दके द्वारा एकदम सीधे पदार्थका बोध होता है और वह संकेत सापेक्ष होकर होता है। यदि शब्दोंमें वाचकत्व शक्ति है, शब्द पदार्थका वाचक होता है। तो अब जो शब्द गुणवान पुरुषोंके द्वारा बोले गए हैं वे शब्द प्रमाणभूत होते हैं और जो दोषवान पुरुषोंके द्वारा बोले गए हैं वे शब्द अप्रमाणभूत होते हैं।

शब्दकी निर्देशकताका कथन—शंकाकार कहता है कि निर्देशता और साधारणता वस्तुको छोड़कर और कुछ चीज नहीं मालूम होती। और वस्तु है अवाच्य तो अपने आप निर्देश्य हो गया। कहते हैं कि यह बात तो असाधारणपनेमें भी समान है। वहां भी यह कह दिया जायगा कि सुलभ स्वलक्षणसे अलग अन्य कोई साधारणता कुछ भी नहीं प्रतिभात होती है। यदि कहो कि साधारणता तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुका स्वरूप ही है तो यह बात अन्य जगह भी कह देंगे कि निर्देश्यता साधारणता भी वस्तुका स्वरूप है। यों शब्दके द्वारा पदार्थ अनिर्देश्य होता है यह बात कहना संगत नही होता। यदि अनिर्देश्य हो तो फिर वचन व्यवहार भी समाप्त। जैसा कीड़ा मकोड़ोंके वचन निकलते हैं उन वचनोंके द्वारा कुछ निर्देश नही होता है। तो क्या उनसे व्यवहार चलता है? इसी तरह मनुष्योंके शब्दोंमें भी यदि कुछ निर्देश नही पड़ा है, कोई वाच्य वाचक भाव नही है तो फिर बोलनेका प्रयोजन क्या रहा? न कुछ निषेध कर सकेंगे न कोई विधि। बोलना ही व्यर्थ है जब शब्दके द्वारा बात ही रही कही जाती। पर ऐसा तो नही है। शब्दोंकी तो ऐसी उत्तम उत्तम रचनायें चलती हैं कि जिन रचनाओंसे विद्वत् जन बड़े बड़े अर्थ मर्म समझकर प्रसन्न हुआ करते हैं, इससे यह सीधी बात माननेको इन्कार नहीं किया जा सकता कि शब्द अर्थके प्रतिपादक होते हैं।

निषेध्य वाच्यताके वस्तुगत या अवस्तुगत होनेके विकल्पोंसे निषेधयत्वकी असिद्धि—अब एक दूसरी भी बात सुनो कि जिस वाच्यताका स्वलक्षणमें प्रतिषेध किया जा रहा है, कह रहे हो ना कि शब्द स्वलक्षणके वाचक नही हैं किन्तु अन्यापोहके वाचक हैं। तो अन्यापोहमें रहने वाली वाच्यता क्या वह विकल्पमें प्रतिभासित होने वाली है जिसका कि वस्तुमें निषेध किया जा रहा है अथवा वह अन्यापोहगत वाच्यता वस्तुगत है जिसका कि वस्तुमें निषेध किया जा रहा है। इन दो विकल्पोंका सीधा अर्थ यह है कि केवल बुद्धिमें प्रतिभासित हुई अन्यापोहगत वाच्यता शब्दों द्वारा किसी प्रकार समझी गई वाच्यताका विरोध किया जा रहा है या वास्तविक वाच्यताका निषेध किया जा रहा है? यदि कहोगे कि विकल्पमें आने वाली परिकल्पित है, अन्यापोहगत वाच्यताका निषेध किया जा रहा है तो यह बात युक्त है। कल्पित विकल्परूप अटपट वाचकताका तो निषेध है ही। क्योंकि अन्यापोहमें रहने वाली वाच्यता कोई वास्तविक वाच्यता यदि वस्तुगत हो तो तो उसका निषेध ही नही किया जा सकता था। इससे परिकल्पित वाच्यताका प्रतिषेध किया जा रहा है। इस पक्षमें हमें कोई आपत्ति नही है। ठीक है। इससे तो यही सिद्ध होगा कि वास्तविक वाच्यता का निषेध नही किया जा रहा है किन्तु उपलल्पित वाच्यताका निषेध किया जा रहा है। यदि द्वितीय पक्ष मानोगे। अर्थात् वस्तुमें वास्तविक वाच्यताका निषेध किया जा रहा है तो ऐसा कहनेमें स्व वचन विरोध हो रहा है। पहिले तो कह रहे हो कि वास्तविक वाच्यता, फिर कहते हो उसका निषेध किया जा रहा है तो इस वाक्यमें प्रथम अंश तो यह हुआ कि वास्तविक वाच्यता द्वितीय अंश यह हुआ कि उसका निषेध किया जा रहा है तो वस्तुगत वाच्यता हो तो निषेध कैसे किया जा सकता है? वह तो वस्तुगत है। यथार्थ है। तो इस कारण आत्मा की प्रमाणीकता यदि चाहते हो तो प्रतीति सिद्ध अर्थकी बात तो अवश्य मान लेना चाहिये। सर्वजनोंकी प्रतीतिमें यह बात बैठी हुई है कि शब्दमें अर्थकी वाचकता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पड़ी हुई है शब्द बोलते ही जैसे जो कुछ हित रूप अथवा अहितरूप है, उस ढंगसे उस पदार्थके प्रति व्यवहार करते हैं। इससे प्रकट सिद्ध है कि शब्द अर्थका वाचक है। और जब वचन पदार्थोंके वाचक हुए तो यह सिद्ध हुआ कि वचन और संकेत आदिकके निमित्तसे अर्थ ज्ञान हुआ करता है। अब वह अर्थज्ञान यदि सर्वज्ञ पुरुषके वचन आदिकके निमित्तसे हुआ है तो वह आगम रूप है। और, यदि अनाप्त असर्वज्ञ पुरुषके वचन संकेत आदिकके निमित्तसे हुए हैं तो वे अयथार्थ हो सकनेके कारण अप्रमाण हैं, अनागम हैं। यों आगमके लक्षणका यह मूल प्रकरण चल रहा है जिसमें कहा गया कि आप्तके वचन आदिकके निमित्तसे होने वाले अर्थ ज्ञानको आगम कहते हैं। आप्त है, सर्वज्ञ है इसकी सिद्धि पहिले बड़े विस्तारपूर्वक की गई है और वचन अर्थके प्रतिपादक होते हैं। शब्दों द्वारा पदार्थोंका अवबोध होता है तो यों यह लक्षण पूर्ण सिद्ध हो जाता है कि सर्वज्ञके वचनके कारणसे जो अर्थज्ञान हुआ वह आगम है।

ज्ञानके भेदोंके प्रकरणमें आगमप्रमाणका कथन - ज्ञानके मूलमें दो भेद किये गए थे प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्षके दो भेद किये गए—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो जो चक्षु इन्द्रिय द्वारा या अन्य इन्द्रिय द्वारा स्पष्ट जाना जाता है पदार्थ, वह तो है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और इन्द्रिय की सहायता बिना ज्ञानावरणके विश्लेषके कारण आत्मीय शक्तिसे जो अर्थज्ञान होता है परमार्थ प्रत्यक्ष। पारमार्थिक प्रत्यक्षके दो भेद हैं—एक विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष दूसरा सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष। विकल पारमार्थिक प्रत्यक्षमें अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान है। सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष केवलज्ञानको कहते हैं। यों प्रत्यक्ष ज्ञानकी व्याख्याके बाद इस तृतीय अध्यायमें परोक्षज्ञानकी चर्चा चली है। परोक्ष ज्ञानके सबंध में अनेक प्रकारके लोगोंके अभिमत हैं। कोई दो परोक्ष प्रमाण मानता कोई तीन चार मानता पर इनके नाम इस प्रकार बोले गये हैं कि जिससे सब परोक्षोंका उन भेदोंमें ग्रहण नहीं होता और किसी किसी परोक्ष ज्ञानको दुबारा कह दिया गया है। तो उनकी विवेचनाके बाद यह सिद्धान्त प्रकट हुआ कि स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये परोक्षज्ञानके ५ भेद हैं। यह दार्शनिक विधिसे ज्ञानके भेदकी बात चल रही है वस्तुतः जिसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया था वह भी परोक्ष ज्ञान है। इन्द्रिय और मनकी सहायता से जो ज्ञान किया जाता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें इन्द्रियकी अपेक्षा स्पष्ट है फिर भी एक दार्शनिक पद्धतिसे इसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें लेकर पारमार्थिक प्रत्यक्षमें न बताकर प्रत्यक्षत्वके निर्देश करने के दोषसे बचकर यहां परोक्षज्ञानमें ये ५ प्रमाण कहे गए हैं। ये ५ प्रकारके प्रमाण युक्तिसिद्ध हैं और इसको क्रमसे युक्ति सिद्ध की गई है। स्मृति प्रमाणभूत है। स्मृतिके बिना सकल व्यवहारका उच्छेद हो जायगा। प्रत्यभिज्ञान प्रमाणभूत है। प्रत्यभिज्ञान तो पद पदपर लोकव्यवहारमें आता है। कोई शब्द बोला तो उस शब्दके बोलते ही तुरन्त तो उस शब्दका प्रत्यभिज्ञान बनता है। यहां शब्दमें उस शब्दके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समान है जिसका कि संकेत और अर्थ यह है तो इसका भी संकेत अर्थ यही है कि प्रत्यभिज्ञान भी बड़ा जीवनमें उपकारी है। तर्क प्रमाणसे वे सब विचार और युक्तियां चलती हैं जिससे ज्ञानके सत्य और असत्यका भी निर्णय किया जाता है। अनुमान प्रमाण परोक्षज्ञान है क्योंकि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानकी तरह अदृश्य के जाने गए साध्यकी स्पष्टता नहीं होती। उन सब भेदोंका वर्णन करनेके बाद यह आगम प्रमाणका वर्णन चल रहा है।

शब्दके अर्थप्रतिपादकत्वकी सिद्धि होनेसे आगमप्रामाण्यव्यवस्था— आगम प्रमाणके वर्णनमें अनेक शंकायें आयीं। शब्द और अर्थका सम्बन्ध भी है क्या जिससे कि शब्द अर्थका प्रतिपादक बन जाय इस शंकाका भी उत्तर दिया गया। अब यहां मुख्य यह शंका चल रही है कि शब्द अर्थका प्रतिपादक नहीं होता किन्तु अन्यापोहका प्रतिपादक होता है। जो भी शब्द बोला जाय उसका जो भी अर्थ है, भाव है वह भाव सीधा शब्दसे नहीं जाना गया किन्तु उस पदार्थके अतिरिक्त अन्य पदार्थकी व्यावृत्ति है। इतना ही मात्र जाना गया। पदार्थके साथ यह भी जाना गया कि इस पदार्थके अतिरिक्त अन्य पदार्थोंका धर्म इसमें नहीं है। यह तो शोभा शृङ्गार की बात थी किन्तु जहां यह एकान्त कर लिया गया कि शब्दके द्वारा तो अन्यापोह मात्र कहा गया है, शब्द द्वारा वस्तु वाच्य ही नहीं होता तो ऐसा माननेपर न तो शास्त्र रहता न आगम रहता, न लोकव्यवहार चलता। सबका लोप हो जाता। तो प्रतीतिसे युक्तिसे यह सिद्ध किया गया यहां कि शब्द अर्थका ही प्रतिपादक होता है। परिकल्पित अन्यापोह आदिकका प्रतिपादक नहीं होता। यों जिसको अपने ज्ञानकी प्रमाणताका निर्णय करना है, जिनको अपने ज्ञान आत्माकी प्रमाणिकताका निर्णय करना है उन्हें शब्दजन्य ज्ञानकी प्रमाणीकताको बात तो पहिले ठीक कर लेना चाहिये, क्योंकि समस्त ज्ञानोंकी प्रमाणीकताका आधार तो ये सब शब्द रचनायें हैं। शब्दोंसे हम अर्थ जानेंगे और उससे दोष गुण वाच्यता अवाच्यताकी सारी बात समझेंगे। उसीके आधारपर तो अनुमान प्रमाण है। आगम प्रमाण है। सभी प्रमाण चलते हैं, इससे यह ठीक निर्णय रखना चाहिये कि शब्द अर्थके प्रतिपादक हैं और गुणवान वक्ताके कहे गए शब्दोंके निमित्तसे जो अर्थज्ञान होता है वह अर्थज्ञान प्रमाणभूत आगमभूत है।

पदादिस्फोटमें अर्थवाचकत्वकी सिद्धिका शङ्काकार द्वारा पूर्वपक्ष— आगमके लक्षणके प्रकरणमें प्रसङ्गप्राप्त यह वर्णन चल रहा था कि शब्द तो वाचक होता है और अर्थ पदार्थ वाच्य होता है। इस सम्बन्धमें एक शङ्का तो यह चली थी कि शब्दका वाच्य पदार्थ नहीं होता किन्तु अन्यापोह होता, विवक्षा होती आदिक। सो इन विषयोंपर बड़ा विवेचन किया गया है। अब दूसरी प्रकारकी यहाँ शंका होती है कि पदार्थ तो वाच्य हैं किन्तु उनके वाचक शब्द नहीं हैं। पदार्थोंका वाचक पदादि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्फोट है। वर्णादिकके द्वारा प्रकट किया गया नित्य व्यापक पद आदिक जो अर्थ है उसको स्फोट कहते हैं। यह शंका मीमांसक सिद्धान्तके अनुसार है। शंकाकार यहां यह समझ रहा है कि पदार्थ जो कहेगा सो शब्दके द्वारा न कहेगा, किन्तु शब्दोंके द्वारा पदादिकका अर्थ अभिव्यक्त है। याने शब्द सुनकर उन पदोंका यह अर्थ है ऐसा ज्ञान हुआ और वह अर्थ जो कि स्फोटरूप है वह है पदार्थका वाचक न कि शब्द। यदि वर्णोंको पदार्थोंका वाचक मानोगे तो उसमें यह पूछा जायगा कि क्या वे वर्ण सब समुदित होकर पदार्थके वाचक होते हैं या वे वर्ण जुदे जुदे व्यस्त रहकर पदार्थोंके वाचक होते हैं ? जैसे किसी शब्दके कई वर्ण हैं। पुस्तक कहा तो पुस्तकमें प् उ स् त् अ क् अ ये ७ वर्ण हैं। अब ये व्यस्त हुये पदार्थोंके वाचक होते हैं अर्थात् इनमेंसे जुदे जुदे प् उ आदिक पदार्थके पुस्तकमें वाचक बन जाते हैं। तब तो एक ही वर्णसे पुस्तक आदिक पदार्थोंकी प्रतिपत्ति हो जानी चाहिये। जब वर्णादिक व्यस्त होकर भी पदार्थोंके वाचक रहे हैं तो एक ही वर्णसे पदार्थोंका ज्ञान हो जायगा फिर द्वितीय तृतीय आदिक वर्णोंका उच्चारण करना व्यर्थ हो जायगा। इससे यह तो कह नहीं सकते कि वर्ण व्यस्त होकर जुदे जुदे रहकर पदार्थोंके वाचक होते हैं। अब यदि कहोगे कि वे वर्ण समुदित होकर पदार्थोंके वाचक होते हैं तो यह बात भी ठीक नहीं है क्योंकि वर्णोंका समुदाय बन ही कब सकता है। जो कोई वक्ता पुरुष जो कुछ भी शब्द बोलेगा तो उनमें वे वर्ण क्रमसे बोलनेमें आये और क्रमसे जो वर्ण उत्पन्न होते हैं वे उसके बाद नष्ट हो गए तो जब वर्ण क्रमसे उत्पन्न हुए और उत्पन्न होकर नष्ट हो गए तब उनका समुदाय बन कब सकेगा ?

एक साथ उत्पन्न हुए वर्णोंमें अर्थप्रतिपादकत्वके हेतुभूत समुदितत्वकी अक्षमताका कथन – यह भी नहीं कह सकते कि एक साथ उत्पन्न होने वाले वर्णोंमें समुदायकी कल्पना होती है। क्यों नहीं यह बात युक्त है कि एक साथ वर्ण एक पुरुष की अपेक्षा तो उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि वह पुरुष जब जिस स्थान करण प्रयत्न में लग रहा है तब अन्य स्थान करण प्रयत्न नहीं होते। जब जिस स्थान करणका प्रयत्न हो रहा है तब उसके अनुकूल वर्णकी उत्पत्ति होती है तो एक पुरुषके द्वारा समस्त वर्णोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। और, भिन्न भिन्न पुरुष बोल दें वे समस्त शब्द तो उनका समुदाय एक समयमें हो भी जायगा लेकिन वह शब्दोंका समूह अर्थ का प्रतिपादक नहीं हो सकता जैसे प् उ स् त् अ क् ये सारे वर्ण एक एक अलग अलग बोल दिये भिन्न प्राणियोंने तो उनका समुदाय तो एक समय बन गया पर अर्थ प्रतिपादक वह वचनसमूह न बना क्योंकि शब्दजन्य ज्ञान तो इस विधिसे होता है कि प्रतिनियत वर्णोंका क्रमसे ज्ञान होता जाय। उसके बाद शब्दज ज्ञान होता है। शब्द बोलकर जिस पदार्थका ज्ञान होता है वह इस रीतिसे होता है। तो ये वर्ण न व्यस्त होकर पदार्थोंके प्रतिपादक न हो सके और न समुदित होकर पदार्थके प्रतिपादक बन सके। इस कारण वर्ण पदार्थोंका वाचक नहीं है किन्तु पद आदिक अर्थ पदार्थोंके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाचक हैं। शब्द सुनकर जो कुछ भी अर्थ समझमें आया वह अर्थ है पदार्थका वाचक जल्दी समझनेके लिये इसे इस प्रकार समझलें कि वे पदस्फोट बुद्धयात्मक हैं। शब्दों द्वारा पदादिकका अर्थ अभिव्यञ्जमान हुआ और अर्थ पदार्थोंका वाचक हुआ।

पूर्ववर्णानुगृहीत होकर अन्त्य वर्णमें अर्थप्रतिपादकत्वकी अभिद्धिका शंकाकार द्वारा विवरण यहाँ यह भी नही कह सकते कि अन्तिम वर्ण पूर्व वर्णों से अनुगृहीत होकर वर्णोंका क्रमोत्पाद होनेपर अर्थका प्रतिपादक होता है। शंकाकार प्रतिशंका उठाकर कह रहा है कि वर्ण एक एक वर्ण अलग अलग होनेपर भी पदार्थ के वाचक नही होते और समुदित होकर भी पदार्थके वाचक नही होते. किन्तु पूर्व वर्णोंमेंसे अनुगृहीत अन्तिम वर्ण अर्थका प्रतिपादक होता है। यह भी नही कह सकते कि पूर्वके बोले गए जो वर्ण हैं वे अन्तिमवर्णके प्रति क्या अनुग्रह कर सकते हैं? पूर्व वर्णोंमें अन्तिम वर्णोंके प्रति अनुग्राहकता नही है। अर्थात् पूर्व वर्ण अन्तिम वर्ण पर कोई कृपा करता हो सो बात नही। यदि मानते हो कि पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णके प्रति अनुग्राहक है तो वह अनुग्रहपना क्या है? पहिले तो शब्दोंमें अन्तिम शब्दके प्रति अनुग्रहता यों नही बनती कि सभी वर्ण उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं फिर उनमें एक दूसरेपर अनुग्रह करें इसका अवकाश ही कहां है? और कदाचित् मान लो पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णके प्रति अनुग्राहक होता है तो वह अनुग्राहकपना क्या है? तो अन्तिम वर्णके प्रति पूर्व वर्णोंका जनकत्व होना अर्थात् पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णको उत्पन्न करता है क्या इसका नाम अनुग्रहपना है अथवा जब अर्थ ज्ञानकी उत्पत्ति होती है उसमें सहकारीपन होना क्या यह अनुग्राहकता है? यों दो विकल्प किये गए। उनमेंसे यदि पहिले विकल्पकी बात कहोगे कि पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णके जनक होते हैं, तो यह बात यों गलत है कि वर्ण वर्णकी उत्पत्ति नही होती किन्तु वर्णकी उत्पत्ति प्रतिनियत स्थान आदिकसे हुआ करती है और वर्णाभाव होनेपर भी प्रथम वर्णकी उत्पत्ति देखो किसी वर्णसे नहीं हुई है। सो वर्णसे नही हुई है। सो वर्णसे वर्णकी उत्पत्ति न होने के कारण अनुग्राहकताका यह अर्थ तो ठीक नही हुआ कि पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णको करता है। यदि कहो कि हम दूसरा विकल्प मानेंगे अर्थात् पूर्व वर्णोंकी अनुग्राहकता यह है कि वह अर्थ ज्ञानकी उत्पत्तिका सहकारी बनता है तो यह भी विकल्प युक्त नही है, क्योंकि जो वर्ण हैं ही नहीं उनकी सहकारिता क्या हो सकती है? इस विकल्पसे यह माना जा रहा था कि जैसे पुस्तक बोला, उसमें हैं ७ वर्ण, तो अन्तिम वर्ण जो अ है न उत्तर वर्णी वह पूर्व ६ वर्णोंसे अनुगृहीत होकर पदार्थका प्रतिपादक हुआ है। तो जब पूर्ववर्ण है तब आगेके वर्ण उत्पन्न ही नहीं हुये क्योंकि वे तो आगे बोले जाने वाले शब्द हैं तो जो विद्यमान नहीं हैं उनके पूर्व वर्ण सहकारी कैसे बन जायेंगे और फिर जो पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णोंके प्रति सहकारी नही बन पाते हैं क्योंकि उत्पत्तिके बाद तुरन्त नष्ट हो जाते हैं तो पूर्व वर्ण उत्तर वर्णके सहकारी कैसे होंगे? तो जैसे पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णके प्रति सहकारी नही होते इसी प्रकार पूर्व वर्णके द्वारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पन्न हुआ ज्ञान और उस ज्ञानसे उत्पन्न हुआ संस्कार यह भी अन्तिम वर्णके प्रति सहकारी नहीं बन सकता ।

पूर्ववर्णसंवेदनप्रभव संस्कारसे भी वर्णोंके वाचकत्वकी व्यवस्थाकी असिद्धि – और भी सुनो ; पूर्व वर्णोंके ज्ञानसे उत्पन्न हुआ संस्कार अपने उत्पादक पूर्ववर्णके ज्ञानविषयक अर्थात् पूर्व वर्णकी स्मृतिके हेतु होते हैं, सो वे पदार्थान्तरमें अन्य वर्णोंमें ज्ञानको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं। शंकाकार यह कह रहा है कि जो वर्ण बोला गया है, एक शब्दसे तो प्रत्येक वर्णका होता है ज्ञान और माना उससे उत्पन्न होता है संस्कार, तो वह अपने ही उत्पादक ज्ञानके विषयकी स्मृति करायेगा, अन्य पदार्थोंके विषयमें तो ज्ञान न करा देगा। जो संस्कार जिसके ज्ञानसे उत्पन्न हुआ है वह संस्कार उस हीके सम्बन्धमें स्मृति ज्ञान बना देगा, अन्यका ज्ञान नहीं करा सकता है। जैसे कि घटके ज्ञान करनेसे जो संस्कार बना है वह घटका स्मरण करायेगा या पट आदिकका ? तो इसी तरह समझना चाहिये कि पूर्व वर्णके सम्वेदन से जो संस्कार उत्पन्न होगा वह पूर्व वर्णोंका ही स्मरण करायेगा, वह कहीं अन्य अर्थान्तरका अन्य वर्णका ज्ञान नहीं करा सकता। और, यह भी सम्भव नहीं है कि मेरे संस्कारसे उत्पन्न हुई स्मृतियां वे उत्तर वर्णके ज्ञानमें सम्बन्धकी सहकारी हो जायेंगी सो भी बात नहीं है, क्योंकि वे स्मृतियां एक साथ उत्पन्न नहीं होतीं। जब वर्ण क्रमसे बोले जा रहे हैं उन वर्णोंका भी क्रमसे बोध चल रहा है तो इस शंकाके प्रसङ्गमें उसकी आवश्यकता क्या रही ? स्मृतियां एक साथ उत्पन्न होती और एक साथ उत्पन्न होने वाली स्मृतियोंसे फिर अवस्था सम्भव है क्योंकि जो जो वर्ण बोले गये वे बोलनेके ही साथ नष्ट होते गए। तो उन वर्णोंसे कैसे संस्कार बन सकता है ? यह भी नहीं कह सकते कि समस्त संस्कारोंसे उत्पन्न होने वाली या समस्त संस्कारोंको उत्पन्न करने वाली या समस्त संस्कारोंसे उत्पन्न होनेवाली एक ही स्मृति हो सो बात नहीं है, क्योंकि परस्पर विरुद्ध अनेक पदार्थोंकी अनुभूतिसे उत्पन्न जो संस्कार होते हैं वे एक स्मृतिको उत्पन्न न करेंगे, लेकिन अब तुम्हारे इस कथनमें भी कैसे एक युक्ति बन सकती है ? जैसे भिन्न भिन्न पदार्थोंके अनुभवसे स्मृति नहीं बना करती। नहीं तो सब जीवोंमें, सभी पदार्थोंके अनुभवसे उत्पन्न हुए संस्कार एक ही स्मृतिको उत्पन्न करें इससे पूर्व वर्णोंसे अन्तिम वर्ण कुछ भी अनुगृहीत होता है तब अन्तिम वर्ण शब्दका प्रतिपादक है यह बात सम्भव नहीं होती।

अन्यवर्णनिपेक्ष होकर भी अन्त्य वर्णमें अर्थप्रतिपादकताका अभाव – यह भी नहीं है कि अन्य वर्णोंकी अपेक्षा न रखकर अन्तिम वर्ण पदार्थका प्रतिपादक हो जाये। जैसे पुस्तक शब्दमें पूर्वके ६ वर्णोंकी अपेक्षा न रखकर अन्तिम वर्ण जो अ है वह अर्थका प्रतिपादक बन जाय यह बात भी युक्त नहीं है। यदि अन्तिम वर्ण पूर्व वर्णोंकी अपेक्षा न रखकर पदार्थोंका प्रतिपादक हो तब फिर पूर्व वर्णोंका उच्चारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करना व्यर्थ है। और, फिर जो अन्तिम वर्ण है वह तो अव्यवस्थित रहेगा। अनेक जगह पाया जाता है, तो किसी भी शब्दमें रहने वाला जो अन्तिम वर्ण है वह यदि अर्थका प्रतिपादक है तो दुनियामें जितने भी पदार्थ हैं, पुस्तक चौकी, गाय, भैंस आदिक सभी पदार्थोंका बोध हो जाना चाहिये। इससे यह बात एकदम स्पष्ट है कि वर्ण न तो समुदित होकर याने समस्त रूपमें आकर पदार्थका प्रतिपादन कर सकता है और न वर्ण अलग-अलग रहकर अर्थके प्रतिपादक हो सकते हैं और होती तो है शब्दोसे अर्थ की प्रतीति। पुस्तक कहा तो झट सब लोग पुस्तक समझ गए। गौ कहा तो सब लोग गौ समझ गए। इस तरह जब वर्ण समूह समस्त या व्यस्त होकर भी अर्थके प्रतिपादक नहीं हैं और उन शब्दोंसे अर्थकी प्रतीति होती है तब अन्यथानुपपत्तिसे यह सिद्ध हुआ कि वर्णसे अतिरिक्त कोई स्फोट नामक तत्त्व है, वह पदार्थके ज्ञानका कारण होता है। पदार्थका वाचक शब्द सही है किन्तु पदार्थका वाचक पदस्फोट है। शब्दोंसे तो पदका अर्थ व्यक्त किया जाता है। अब जो कुछ अर्थ समझा गया वह अर्थ पदार्थका वाचक है।

वर्णसे अर्थसंविति होनेमें बाधा देकर स्फोटके पदार्थवाचकत्वका समर्थन—शंकाकार कह रहा है कि वाचकत्वके सम्बन्धमें दूसरी बात यह है कि इन्द्रियजन्य ज्ञानमें यह वर्ण निरन्वय होता हुआ बिना क्रमके प्रतिभासमान होता है अर्थात् निरंश होता हुआ वर्ण श्रोत्रविज्ञानमें प्रतिभासित होता है सुननेके व्यापार के भी अनन्तर भिन्न अर्थको प्रकट करने वाली ज्ञप्तिका अनुभव होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वर्ण निरंश होकर एक साथ प्रतिभासमान होता है। वह अनुभव वर्ण विषयक नहीं है, क्योंकि वर्ण तो परस्पर एक दूसरेसे हटे हुए हैं तब वे वर्ण एक प्रतिभासको उत्पन्न नहीं कर सकते व और वह जानकारी सामान्य विषयक भी नहीं है क्योंकि वर्णत्वको छोड़कर अन्य कुछ सामान्य उन वर्णोंमें नहीं पाया जाता। जैसे पुस्तक शब्द बोला और उसमें प् उ आदिक ७ वर्ण हैं तो उन वर्णोंमें सामान्य और क्या चीज है? वर्णोंके वर्णत्वको सामान्य कहते हैं और वर्णत्व कभी प्रतिनियत अर्थ का परिज्ञान करने वाला हो नहीं सकता। और, इस प्रतीति जानकारीको भ्रान्त भी नहीं कह सकते। जो हम शब्द सुनकर जानकारी किया करते हैं वे जानकारियां भ्रान्त हों सो बात नहीं क्योंकि वे तो बाधा रहित जानकारी हैं। अबाध्यमान हैं अतएव ये जानकारियां भ्रान्त नहीं हैं। और, यह भी नहीं कह सकते कि भले ही यह स्फोट अबाध्यमान ज्ञानका विषय है तो भी इसका असत्त्व है। है ही नहीं यह बात नहीं कह सकते। क्योंकि इस तरहसे तो अवयवी द्रव्यादिकका भी असत्त्व बन बैठेगा। जो प्रत्यक्षज्ञानके विषयभूत हैं घट पट आदिक पदार्थ, ये हैं सब अवयवी पदार्थ। इनके छोटे छोटे अंश हो जायें तो अनेक हो सकते हैं। सो यों ये अबाध्यमान ज्ञानका विषयभूत होनेपर भी उसे असत् मान लिया जाय तो ये सब घट पट भोजन वस्त्र आदिक अबाध्यमान ज्ञानके विषयभूत हैं तिसपर भी इनका असत्त्व हो जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस तरह वर्ण अर्थके वाचक नही हुआ करते। किन्तु वर्णोंसे अभिव्यञ्जमान व्यक्त हुआ जो पद दिकका अर्थ है वह अर्थ पदार्थका वाचक होता है।

स्फोटके नित्यत्वका शंकाकार द्वारा समर्थन—वर्णादिकके द्वारा अभिव्यञ्यमान पदादिकोंके अर्थका नाम है स्फोट और उस स्फोटको नित्य मानना चाहिये। वर्ण बोलकर, सुनकर जो पदादिकका अर्थ प्रतिभासमें आया वह अर्थ नित्य है। जैसे कि कभी कभी शब्द व्यक्त होते हैं तिसपर भी शब्दोंको नित्य माना गया है। इसी प्रकार वर्णादिकसे जो अर्थ प्रकट होता है क्योंकि स्फोटको अनित्य मानकर कभी उस स्फोटसे पदार्थकी प्रतीति ही नही हो सकती क्योंकि संकेत कालमें जिस स्फोटका अनुभव किया था, संकेतकालमें अनुभव किया गया स्फोट तो उसी समय नष्ट हो गया। फिर वह वाचक कैसे बन सकता। यदि नित्य नही मानते, अनित्य माना जा रहा हो उस बोचकी शंकायें हैं ये संकेतके समयमें अनुभव किया गया स्फोट तो उसी समय नष्ट हो गया। अब अन्य समयमें अन्य देशमें उसी शब्द को सुना। पुस्तक शब्दको सुना तो उससे पुस्तकत्व धर्म वाले अर्थकी प्रतीति न होगी क्योंकि असंकेतित शब्दसे जिस शब्दका कोई संकेत नही बना उसमें अर्थका ज्ञान असम्भव है। यदि कहो कि जिन शब्दोंके संकेत नही किए गए जैसे असंकेतित शब्दोंसे ऐसे अर्थका ज्ञान होता है तो अन्य द्वीपसे आये हुए पुरुषको भी पुस्तक आदिक अर्थों की प्रतिपत्ति हो जाना चाहिये। और, जब असंकेतित शब्दसे भी पदार्थोंका ज्ञान होने लगे, अपरिचित मनुष्य भी शब्द सुनकर उसका अर्थ समझने लगे फिर उसमें संकेत का करना भी व्यर्थ हो जायगा। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जाना तो जाता है पदार्थ ही मगर उन पदार्थोंका वाचक शब्द नही किन्तु शब्दों द्वारा अभिव्यञ्जमान पदादिकका अर्थ ही वस्तुका वाचक होता है। इस तरह पदार्थ तो वाच्य हुआ किन्तु उसका वाचक शब्द नहीं किन्तु स्फोट होताहै। इस तरह मीमांसक सिद्धान्तानुयायी ने वाच्य तो पदार्थको माना किन्तु उसका वाचक शब्द नहो है। वर्णोंसे व्यक्त किया गया पदादिकका अर्थ जो बुद्धिगत होता है वह पदार्थोंका वाचक है यह सिद्ध किया गया।

वर्णकी अर्थप्रतिपादकताके प्रतिविधानमें पूर्ववर्णाभावकी कार्यजनकता की सिद्धि—वर्णोंके द्वारा अर्थ वाच्य नही होता है किन्तु पदस्फोट ही वाचक हुआ करता है ऐसी आशंकाका अब उत्तर देते हैं। जो बात सब जनोंमें प्रतीयमान है उस को न मानकर किसी अघटित तत्वकी कल्पना करना विवेक नही है। ज्ञान आत्महित के लिए किया जाता है। तब ज्ञानको इतना दुरूह कठिन बना लेना यह शान्तिमार्गके अनुसार बात नही है। स्पष्ट विदित होता है कि सुने हुए शब्दके पूर्व वर्णके ध्वंससे सहित अन्तिम वर्णसे अर्थप्रतीति जानी जाती है। इस कारण वर्णोंसे अर्थकी अभिव्यक्ति माननेमें अर्थकी वाच्यता माननेमें जो दोष दिया गया था कि वर्ण ध्वस्त होकर

http://sahjanandvarnishastra.org/

वर्ण अर्थके प्रतिपादक होते हैं या समस्त समुदित होकर अर्थके प्रतिपादक होते हैं और उनमें दोषकी कल्पना की, वे कोई दोष नहीं लगते। पूर्व वर्णके ध्वस्त होनेको अन्तिम वर्णमें सहकारिताका विरोध नहीं है क्योंकि देखा जाता है कि डंठल और फूलका जब संयोग नहीं रहता। पेड़में कोई आमका फल लगा है तो जब तक डठलका संयोग है टहनीमें जब तक वह फल ऊपर लगा हुआ है और जब डंठलका और फलका संयोग मिट जाता है तो संयोगका अभाव भी कुछ काम कर रहा है कि फल गिरनेके कार्यमें काम कर रहा है अर्थात् जब डठलका और फलका संयोग नहीं रहा तो फलमें जो गुरुता थी, जो डंठलके सम्बन्धसे प्रतिबद्ध थी, गुरुताका काम है नीचे गिर जाना, सो नहीं हो रहा था। ज्यों ही डंठल और फलके संयोगका अभाव हुआ कि गुरुता अप्रतिबद्ध होनेसे अब वह संयोगका अभाव फल गिरानेके कार्यकी उत्पत्तिमें कारण बन रहा है। और, यह तो सब पदार्थोंमें सिद्धान्तकी बात है कि पूर्वपर्यायका अभाव उत्तर पर्यायकी उत्पत्तिका कारण बनता है। उत्तरमें होने वाला संयोग, उसका करने वाला कौन? पूर्वपर्यायके संयोगका अभाव। जब किसी वस्तुका और अग्निका संयोग होता है जैसे जलभरी बटलोही और अग्निका संयोग होता है तो देखो उस कालमें पानीमें जो शीतपर्याय हो रही थी उसका प्रध्वंस हो जाता है और उष्णताकी उत्पत्ति हो जाती है। उस कच्चे घड़ेका अग्निसे संयोग होनेसे उस घड़में जो पूर्वरूप था काला, पीला आदिक जो मिट्टीका रूप था वह प्रध्वंससे युक्त होता है और ललाईकी उसमें उत्पत्ति देखी जाती है। तो देखो! जो लालिमाकी उत्पत्ति हुई वह पूर्वरूपके प्रध्वस से विशिष्ट है तो इसी प्रकार शब्दोंमें जो अंतिम वर्ण है वह पूर्व वर्णोंके प्रध्वंससे विशिष्ट होते हैं तो अर्थकी प्रतीति उससे होती है यह बात सबकी बुद्धिमें आ रही है।

पूर्व वर्ण विज्ञानाभाव विशिस्टपूर्व वर्णज्ञानज संस्कारापेक्ष अन्तिम वर्णमें अर्थप्रतीत्युत्पादकत्व—अथवा पूर्व वर्णके विज्ञानके अभावसे सहित, पूर्व वर्ण के ज्ञानसे उत्पन्न हुए संस्कारकी अपेक्षा रखने वाला अन्तिम वर्ण पदार्थ प्रतीतिका उत्पादक होता ही है यहाँ यह समझना कि जब शब्द बोले जाते हैं तो उनमें वर्ण जैसे ६-७ भी हों तो जब बोलना शुरू करते हैं और अगला वर्ण बोलते हैं तो पूर्व वर्णका तो ध्वंस हो गया। यों ७ वां वर्ण जब बोला तो पूर्व वर्ण जो बोले गये थे उनका उस समय उस प्रकारका ज्ञान था। पूर्व वर्ण ध्वस्त हुए उसके साथ पूर्व वर्णके विज्ञानका भी अभाव हुआ। अब उस स्थितिमें विशिष्ट जो अन्तिम वर्ण बोला जा रहा है जो कि पूर्व वर्णोंके ज्ञानसे उत्पन्न हुए संस्कारकी अपेक्षा रख रहा है तो उस क्रममें उत्तरोत्तर वर्ण बोले जा रहे हैं। तो यों वह अन्तिम वर्ण अर्थ प्रतीतिका उत्पादन करने वाला है। शंकाकार कहता है कि पूर्व वर्णोंका संस्कार विषयान्तरमें ज्ञान कैसे पैदा कर देगा? अर्थात् जिस अर्थको समझनेके लिए शब्द बोले जा रहे हैं वे अर्थ तो हैं विषयान्तर क्योंकि संस्कार तो किया गया पूर्व वर्णोंका। तो पूर्व वर्णोंका संस्कार अन्य पदार्थोंमें विज्ञान कैसे उत्पन्न कर देगा? उत्तर देते हैं कि यह प्रश्न यों युक्त नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि ऐसा देखा जा रहा है । संस्कारके होनेपर पदार्थका ज्ञान हो रहा है। शब्द सुनते ही पूर्व वर्णोंका तो संस्कार रहता है उससे सहित जो अन्तिम वर्ण बोला गया उसके अनन्तर ही पदार्थका बोध हो जाता है। इस तरह पूर्व वर्णके ज्ञानके संस्कार की अपेक्षा रखते हुए यह अन्तिम वर्ण पदार्थोंकी प्रतीतिका उत्पादक हो जाता है।

पूर्ववर्णज्ञानप्रभावसंस्कार द्वारा अन्तिम वर्ण सहायता पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णके सहकारी किस तरह होते हैं और पूर्व वर्णोंके विज्ञानसे उत्पन्न हुआ संस्कार भी किस विधिसे अन्तिम वर्णकी सहायता किया करता है इसकी भी विधि सुनो। किसी शब्दमें मान लो ६–७ वर्ण हैं तो प्रथम वर्णमें तो उस प्रथम वर्णका विज्ञान हुआ और उस विज्ञानसे फिर प्रथम वर्णका संस्कार उत्पन्न हुआ। अब प्रथम वर्ण तो बोलते ही नष्ट हो गया, लेकिन उसका ज्ञान संस्कार अभी बन रहा है। तो उस प्रथम वर्णके संस्कारसे द्वितीय वर्णका विज्ञान चला। तब यहाँपर पूर्व ज्ञानसे जो संस्कार उत्पन्न हुआ था उस संस्कारसे सहित इस द्वितीय वर्णके द्वारा विशिष्ट संस्कार उत्पन्न हुआ है, अर्थात् पूर्व वर्ण जितने बोले जाते हैं उनके ज्ञानका संस्कार रहता है और वह संस्कार अन्य वर्णोंके ज्ञानमें कारण बनता है, इसी तरह तृतीय चतुर्थ आदिक वर्ण बोलते जाइये वहाँ पूर्व वर्णोंको ज्ञानका संस्कार चलता रहता है और, जब अन्तिम वर्णका संस्कार हो जाता है तब उस अर्थ प्रतीतिकी उत्पत्ति करने वाले अंतिम वर्णकी सहायता पूर्व वर्णोंमें समझ ली जाती है। इससे पूर्व वर्णोंसे प्राप्त किया है संस्कार जिसने ऐसा यह अन्तिम वर्ण पदार्थका प्रतिपादक होता है। वर्णोंसे स्फोट मानें और स्फोटसे फिर अर्थकी प्रतिपत्ति करें इसकी आवश्यकता नहीं है।

क्षयोपशमके अनुसार संस्कार व्यवस्था—अथवा देखिये ! किस प्रकार पूर्व वर्णोंके द्वारा अन्तिम वर्णमें संस्कार आते हैं। संज्ञी जीवोंमें शब्दार्थकी उपलब्धिके निमित्त क्षयोपशम पाया जाता है उसके नियमसे वे वर्ण ज्ञान अथवा संस्कार अनिवष्ट कहे गए हैं। तो लब्धिकी अपेक्षा, द्रव्यत्व स्वरूपकी अपेक्षा ही पूर्ववर्णोंका ज्ञान और उन पूर्व वर्णोंके ज्ञानके संस्कार वे विशिष्ट हैं, वे ही अन्तिम वर्ण उस संस्कारको किया करते है। तब संस्कारकी अपेक्षा रखने वाला अन्तिम वर्ण पदार्थका कारण हो जाता है क्योंकि वर्णज्ञानका संस्कार चला, धारणा चली और उन वर्णोंके ज्ञानकी स्मृति रही। उस स्मृतिसे युक्त अन्तिम वर्ण पदार्थकी प्रतिपत्तिका कारण होता है। जैसी बात पदके अर्थके सम्बन्धमें कही गई है वही बात बहुत पदोंका मिलकर जो वाक्य बनता है, उस वाक्यार्थकी प्रतिपत्तिमें भी न्याय ऐसा ही चलता है। तो पूर्व वर्णोंसे अन्तिम वर्णका संस्कार कैसे बन सकता है, यह कहना अयुक्त है।

वर्णकी उत्पत्ति और पदार्थ प्रतिपत्तिका साधन—इस प्रसंगमें जो यह दोष दिया कि वर्णसे वर्णकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वर्ण जब बोला तो बोलते ही उसका प्रत्यक्ष हो गया। अब नवीन वर्ण आया तो नवीन वर्णकी पूर्व वर्णने उत्पत्ति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कल्पना बन नहीं सकता क्योंकि तब वह रहा ही नहीं। तो वर्णसे वर्णकी उत्पत्ति नहीं होती ऐसा कहना तो सिद्ध साधन है। हम भी तो वह मानते हैं कि वर्णसे वर्णकी उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु तालू आदिक जो स्थान हैं उन स्थानोंका संयोग वियोग होनेसे वर्णकी उत्पत्ति होती है। तब यह समझना कि जिस प्रकार अभी संस्कार विज्ञान आदिककी अपेक्षा रखकर पूर्व वर्णोंकी सहकारिता बतायें ऐसा सहकारी कारणोंकी अपेक्षा रखकर जो अन्तिम वर्ण उत्पन्न होता है, उस अन्तिम वर्णसे अर्थकी प्रतिपत्ति होती है। और, वह अर्थप्रतिपत्ति अन्वयव्यतिरेकोंसे निश्चित है। अर्थात् अन्तिम वर्णके सद्भाव हो पर अर्थकी प्रतिपत्ति होती है और अन्तिम वर्णके अभावमें अर्थकी प्रतिपत्ति नहीं होती। जैसे पुस्तक कहा तो अन्तिम वर्ण क अथवा अ बोल चुकनेके बाद ही तो अर्थकी प्रतिपत्ति होती है। तो अब अन्वयव्यतिरेकसे इस बातका निश्चय हो गया कि शब्दमें पदमें जो अन्तिम वर्ण है उससे पदार्थका अवबोध होता है तो स्फोटकी कल्पना करना तो असम्भव बात है। स्फोटकी कल्पना न करनेपर भी अन्तिम वर्णसे ऐसे ही अन्वयव्यतिरेकसे पदार्थकी प्रतिपत्ति हो जाती है। जब बिल्कुल स्पष्ट विदित देखे गए कारणसे कार्यकी उत्पत्ति जाना जा रही है तब किसी अदृष्ट कारणान्तरकी कल्पना करना युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि देखे गए कारणसे जो कार्य हो रहा है उसको न माना जाय तो कभी जलसे भी धूम की उत्पत्ति होने लगना चाहिये। तो तालु आदि स्थानोंसे तो शब्दोंकी उत्पत्ति होता है और उन वर्णोंका उच्चारण करते करते पद सम्बन्धी अन्तिम वर्णके उच्चारण होनेसे पदार्थका अवबोध होता है, तो ऐसा देखा गया जो विधान है उसे न मानकर किसी अदृष्ट अन्य कारणकी कल्पना करना युक्त नहीं है, अन्यथा दृष्ट सुनिश्चित कारणोंकी व्यवस्था समाप्त हो जायगी।

वर्णोंसे स्फोटकी अभिव्यक्तिका अघटन — अब और भी बात विचारें कि जो वर्णोंसे अर्थप्रतिपत्तिमें दोष दिया जा रहा था वह दोष तो वर्णोंसे स्फोटकी अभिव्यक्ति माननेपर भी आता है। तब वर्णोंसे स्फोटकी अभिव्यक्ति भी सिद्ध नहीं की जा सकती। अच्छा बताओ कि वह वर्ण समस्त समुदित होकर स्फोटकी अभिव्यक्ति करता है क्या? अथवा व्यस्त होकर एक एक वर्ण स्फोटमें अभिव्यक्ति करता है? समुदित होकर वे समस्त वर्ण स्फोटकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाते। क्योंकि उन वर्णोंमें समुदितता हो ही नहीं सकती। वे वर्ण क्रमसे बोले जा रहे हैं तो वर्ण वे इकट्ठे कहां हो पायेंगे और अनेक जगहोंमें अनेक पुरुष उन शब्दोंको बोलें उससे स्फोटकी अभिव्यक्ति मानी जाय तो इसमें बड़ा दोष होगा। ऐसा होता भी नहीं कि भिन्न भिन्न शब्दोंके द्वारा एक एक वर्ण जो बोले गए उनको जोड़ करके किसी पदार्थका ज्ञान किया जाता हो। तो समस्त समुदित होकर भी एक एक प्रत्येक वर्ण स्फोटमें अभिव्यक्ति नहीं कर सकते। यदि एक एक वर्णसे स्फोटकी अभिव्यक्ति करें तब तो अन्य वर्णोंका उच्चारण करना व्यर्थ हो जायगा क्योंकि एक ही वर्णके द्वारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्व रूपसे इस स्फोटकी अभिव्यक्ति हो गई। यदि कहो कि पदार्थान्तरोंकी प्रतिपत्ति के विनाशके लिये वर्णोंका उच्चारण किया जाता है अर्थात् कहीं अन्य पदार्थोंका बोध न हो जाय इसके लिये इन समस्त वर्णोंका उच्चारण करना पड़ता है। स्फोटकी अभिव्यक्ति तो एक वर्णसे हो गयी किन्तु अनेक वर्णोंके उच्चारण करनेका प्रयोजन यह है कि अन्य पदार्थोंमें कहीं अन्य पदार्थकी प्रतिपत्ति न हो जाय यह कहना भी युक्त नही हैं क्योंकि समस्त वर्णोंमें उच्चारण करनेपर भी उन शब्दोंका अर्थ जो कुछ है उसकी प्रतिपत्ति होती ही है। यदि किसी शब्दके कई अर्थ हैं तो उस शब्दके द्वारा कई अर्थोंकी प्रतिपत्ति हो जायगी। व्यस्त वर्णसे स्फोटकी अभिव्यक्तिमें एक एक वर्णके उच्चारणसे पदार्थमें प्रतिपत्ति होती है ? तो उसमें जितने वर्ण हैं उतने ही उसके वाच्य पदार्थ हैं जैसे कि एक गौ शब्द बोला तो गौ शब्दमें दो वर्ण हैं—ग और औ। गौ में ग के उच्चारणसे तो गायकी प्रतीति हुई और औ के उच्चारणसे औशनस अर्थात् वीर्यकी प्रतीति हुई। इस तरह गौ एक पदके बोलनेसे दो अर्थोंकी प्रतिपत्ति हो गई। ग से गाय माना ही है और औ शब्दसे औशनस वीर्य नामक पदार्थकी प्रतीति होगी या उसमें संशय हो जायगा कि क्या एक पदस्फोटकी व्यक्तिके लिये ग आदिक वर्णोंका उच्चारण अन्य पदान्तरस्फोटके व्यवच्छेदसे किया गया है या अनेक पद स्फोटकी अभिव्यक्तिके लिये अनेक आद्य वर्णोंका उच्चारण किया गया है ? यों शब्दोंसे स्फोटकी अभिव्यक्ति माननेपर संशय भी हो जायगा। इससे यह मानना युक्त है कि एक पदमें जितने वर्ण हैं जिस क्रमसे वर्ण हैं उस क्रमसे उन वर्णोंका उत्पाद हुआ फिर उन वर्णोंके अभावसे विशिष्ट जो अन्तिम वर्ण है और पूर्व वर्णके विज्ञान के संस्कारसे सहित जो अन्तिम वर्ण है उससे पदार्थकी प्रतिपत्तिकी व्यवस्था होती है।

व्यस्त वर्णसे स्फोटाभिव्यक्तिमें अन्य वर्णके उच्चारणकी व्यर्थताका कथन—शङ्काकार यहां कहता कि पूर्व वर्णोंके द्वारा संकेतका संस्कार बनाया जाता है उस स्फोटका संस्कार बननेपर अन्तिम वर्ण स्फोटका अभिव्यञ्जक हो जाता है। इस कारणसे अन्य वर्णोंका उच्चारण करना व्यर्थ नहीं हो पाता। शङ्काकारका अभिप्राय यह है कि स्फोटकी अभिव्यक्ति तो अन्तिम वर्णसे हो जाती है अथवा किसी भी एक वर्णसे हो जाती है, पर उस स्फोटका संस्कार बनानेमें अनेक वर्णोंके पूर्व वर्णोंकी आवश्यकता यों होती है कि जब पूर्व वर्णोंके द्वारा स्फोटका संस्कार बन जाय तो अन्तिम वर्ण स्फोटका अभिव्यञ्जक होता है, यों अन्य वर्णोंका उच्चारण करना व्यर्थ नहीं है, सप्रयोजन है, ऐसी शंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि स्फोटका संस्कार चीज ही और क्या है ? जो अभिव्यक्ति है उसका प्रकट होना वही तो संस्कारका स्वरूप है। प्रकट होनेके अतिरिक्त संस्कारका अन्य स्वरूप कुछ नहीं है।

स्फोटसंस्कारके स्वरूपकी असिद्धि—कदाचित् मान लो कि पूर्व वर्णोंके द्वारा स्फोटका संस्कार किया गया तो उन पूर्व वर्णोंने अंतिम वर्णमें संस्कार क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रचा ? उस संस्कारकी विशेषता तो बताओ। क्या वेग नामक संस्कार रचा गया अथवा वासनारूप संस्कार रचा गया अथवा स्थितको ठहरानेरूप संस्कार रचा ? प्रथम पक्ष तो कह नहीं सकते अर्थात् पूर्व वर्णोंने वेग नामका संस्कार रचा हो अर्थात् वेगसे कुछ सम्बन्ध बन गया तो यह बात यों युक्त नहीं है कि वेग तो मूर्त पदार्थोंमें ही हुआ करता है ? तुम्हारे सिद्धान्तमें वर्ण मूर्त तो नहीं है। वर्णोंको माना है आकाश का गुण और आकाश है नित्य व्यापक। यों ही वर्ण भी नित्य व्यापक माना गया। तो नित्य व्यापक वर्णोंमें वेग नामक संस्कार तो रचा नहीं जा सकता। यदि द्वितीय पक्षकी बात कहोगे अर्थात् वर्णोंके द्वारा वासनारूप संस्कार रचा गया है तो यह भी युक्त नहीं है वर्ण तो अचेतन है और वासना चेतन है। तो चेतनरूप वासना अचेतन वर्णोंमें कैसे समा जायगी ? यदि उस स्फोटको ही चेतन मान लोगे तो तुम्हारे ही सिद्धान्त का विघात हो जायगा। शब्दाकारके सिद्धान्तमें स्फोटको चेतन नहीं माना गया है। इन दो प्रकारके संस्कारोंका स्वरूप तो वर्णोंके द्वारा किया गया सिद्ध नहीं होता। अब तृतीय विकल्पकी बात सुनो ! क्या संस्कार स्थित स्थापक है ? अर्थात् स्थित हुए पदार्थोंको, चलित हो रहने वाले पदार्थोंको और ठहरवा देते, उनमें कोई हीनता न आ पाये ऐसा संस्कार बन जाता है वर्णोंके द्वारा। यदि यह तृतीय विकल्प अङ्गीकार करोगे तो यह भी युक्त नहीं है क्योंकि स्थित स्थापकरूप संस्कार भी मूर्त द्रव्योंमें रहा करता है पर स्फोट तो अमूर्त माना गया है शब्दाकारने जैसे वर्णोंको अमूर्त माना है इसी प्रकार वर्णोंके द्वारा अभिव्यञ्जमान स्फोटको भी अमूर्त माना है तो अमूर्त स्फोटमें स्थित स्थापक नामका संस्कार भी नहीं रचा जाता। जैसे कोई भौतिक पदार्थ हो और वह कहीं चलित न हो जाय इसलिए वह वहीं स्थित ही कराये रहे ऐसा संस्कार बनाया किसी साधनके द्वारा तो वह तो समझमें आ सकता है क्योंकि वह मूर्त पदार्थ है, लेकिन वर्णादिकके प्रकट किया जाने वाला स्फोट स्वयं अमूर्त है तो अमूर्तमें संस्कार क्या किया जा सकता है ?

सुगम स्पष्ट प्रकरण न माननेपर कल्पनाओंका व्यर्थ श्रम देखिये ! कितनी परम्पराकी कल्पना करके शब्दोंके द्वारा पदार्थका प्रतिपादन करनेकी बात कही जा रही है। पहले वर्ण बोले गये उन सब वर्णोंसे पद बना, पदोंका वाक्य बनेगा, उन सबको बोलकर जो अन्तिम वर्ण होगा उस अन्तिम वर्णसे स्फोटकी अभिव्यक्ति होगी। फिर उस स्फोटसे पदार्थका ज्ञान होगा। ऐसी बीचमें एक स्फोटकी कल्पना करना और शब्दोंसे सीधा अर्थका प्रतिपादन होता है इसे अङ्गीकार न करना यह तो सीधे सुगम तत्त्वको कठिन बनाकर एक स्पर्धका जबरदस्ती सिक्का जमानेका प्रयत्न है। उपदेश तो होता है जीवोंके भलेके लिए तब जो बात सीधी कारण कार्यकी, प्रतिपादक प्रतिपाद्यकी सर्व जनसाधारणमें सुप्रसिद्ध है उसे न मानकर अन्य प्रकारकी कल्पना करना और फिर विषयकी उससे व्यवस्था बनाना यह तो कल्पनाओंका काम नहीं है। अतः सीधा समझना चाहिये कि पूर्व वर्णके विज्ञानके संस्कारसे युक्त अन्तिम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वर्ण पदार्थका प्रतिपादक होता है, इस तरह वचनोंसे अर्थज्ञान चलता है। जो गुणवान आप्तके वचन आदिक हैं उनके निमित्तसे जो अर्थज्ञान होता है उसे आगमज्ञान कहते हैं।

स्फोटसंस्कारका स्फोटस्वरूपत्व व स्फोटधर्मत्व इन दो विकल्पोंमें निराकरण—अब यह बताओ कि पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोटका संस्कार माना जा रहा है वह संस्कार क्या स्फोटस्वरूप है या स्फोटका धर्म है? यदि कहा कि वह संस्कार स्फोटस्वरूप है तो इसका अर्थ यह हुआ कि पूर्व वर्णोंके द्वारा स्फोट संस्कार किया इसके मायने है कि स्फोट ही किया गया। तब यों स्फोट वर्णके द्वारा उत्पाद्य बन गया। और, जब स्फोटकी वर्णके द्वारा उत्पत्ति हुई तो जो उत्पन्न होता है वह नित्य नहीं हुआ करता तो यों स्फोट अनित्य बन गया। यदि कहो कि वर्णोंके द्वारा किये गए स्फोटका संस्कार स्फोटका धर्म है तो यह बतलावो कि स्फोटका वह धर्म स्फोटसे भिन्न है अथवा अभिन्न है? यदि कहो कि स्फोटका वह धर्म स्फोटसे अभिन्न है तो इसका अर्थ भी यह हुआ कि वर्णोंने स्फोटका धर्म क्या किया? स्फोट ही कर दिया। क्योंकि किया गया स्फोटका धर्म संस्कार स्फोटसे अभिन्न मान लिया गया। तो इसका अर्थ हुआ कि धर्म किया याने स्फोटको ही किया। और इस प्रकार स्फोट फिर अनित्य बन गया, तो इसमें शङ्काकारके सिद्धान्तका ह घात हो गया। शङ्काकारके सिद्धान्तमें स्फोटको नित्य माना है। लेकिन यहां अनित्य बन गया। यदि कहो कि पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोट संस्कार किया गया वह स्फोटका धर्म है और स्फोटसे वह धर्म भिन्न है। तो जब स्फोटका धर्म स्फोटसे भिन्न रहा तो अब स्फोटमें और धर्ममें अथवा संस्कारमें सम्बन्ध नहीं बन सकता क्योंकि जब भिन्न ही चीज है तो वह उपकारक नहीं बन सकती। स्फोटका संस्कार जब स्फोटसे भिन्न है तो वह संस्कार स्फोटका उपकार क्या करेगा? और यदि मानते हो कि स्फोटके धर्मरूप संस्कारने स्फोटका उपकार किया है तो उस उपकारके सम्बन्धमें भी बतलावो कि वह उपकार स्फोटसे भिन्न है अथवा अभिन्न है? यदि उस उपकारको स्फोटसे अभिन्न मानोगे तो वही आपत्ति आयी कि उपकार किये गए स्फोटको ही उत्पन्न कर दिया गया। यदि उपकारसे भिन्न मानोगे तो उनमें स्फोट और उपकारका सम्बन्ध न बन सकेगा।

स्फोट संस्कारमें उत्पादकत्वकी अनिवार्यता होनेसे अनित्यत्वका प्रसंग—अच्छा, अब यह बतलाओ कि संस्कारसे पहले तो स्फोट अनभिव्यक्तस्वरूप है सो अभिव्यक्तस्वरूपका अपरित्याग अब भी है या परित्याग होता है? यह तो नहीं कह सकते कि भिन्न धर्मका सद्भाव होनेपर भी स्फोटका जो अनभिव्यक्त स्वरूप पहिले था उस स्वरूपके अपरित्यागमें ही वैसा अर्थप्रतीतिका कारण बन जाय। क्यों यह युक्त नहीं, यों कि संस्कारसे पूर्व जैसे असंस्कार वाले स्फोटमें पदार्थोंके परिज्ञान करनेका कारणपना नहीं था उसी प्रकार इस स्फोटमें अब भी अर्थकी प्रतिपत्तिका कारणपना नहीं बन सका। अर्थात् स्फोटमें पूर्व अव्यक्त स्वरूपका परित्याग न हो तो अर्थका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतीतिमें कारणता नहीं बन सकती और स्फोट अपने अव्यक्त स्वरूपका त्याग करदे तो इसके मायने है कि स्फोट अनित्य हो गया। जो यह कहा जा रहा है शंकाकार द्वारा कि स्फोटसे पदार्थकी प्रतिपत्ति होती है और स्फोटका संस्कार वर्णोंके द्वारा किया जाता है तो संस्कार करनेका अर्थ यही तो हुआ कि संस्कारसे पहिले स्फोटका अव्यक्त स्वरूप था। संस्कार करनेसे स्फोटका व्यक्त स्वरूप बन गया। तो जब स्वरूपमें फर्क आ गया, पहिले अव्यक्त था, अब अव्यक्त स्वरूपका विनाश हो गया। व्यक्त स्वरूपकी उत्पत्ति हो गयी तो यह उत्पादव्यय ही तो अनित्यताको सिद्ध करता है तो यों स्फोटमें अनित्यत्यका प्रसंग आ गया।

एकदेश अथवा सर्वात्मना स्फोटसंस्कार किया जानेका निराकरण— और भी सुनो पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोटका संस्कार किया जा रहा है वह क्या एक. देशसे किया जा रहा है या सर्व देशसे किया जा रहा है? यदि कहो कि स्फोटका वह संस्कार एक देशसे किया जा रहा है तो उसका वह एक देश इस स्फोटसे भिन्न है अथवा अभिन्न? स्फोटमें जो एक देशमें संस्कार किया गया वह एक देश यदि स्फोटसे अभिन्न है तो एक देश क्या रहा? वह तो पूर्णमें स्फोट हो गया। यदि कहा कि स्फोटका वह एक देश स्फोटसे भिन्न है तो उस एक देशका स्फोटसे सम्बन्ध नहीं बन सकता। यों पूर्व वर्णोंके द्वारा स्फोटका एक देशसे तो संस्कार किया गया नहीं बनता। यदि कहो कि स्फोटका वह संस्कार सर्वात्मक रूपसे किया गया तो इसके मायने यह हुआ कि फिर सब जगह सभी प्राणियोंको उससे अर्थकी प्रतिपत्ति हो जानी चाहिये। क्योंकि स्फोट तो सर्वात्मक रूपसे संस्कृत हुआ है और स्फोट है व्यापक एवं नित्य। तो जब समस्त व्यापक स्फोटमें संस्कार बन गया तो सभी जगह सभी प्राणियोंको अर्थकी प्रतीति हो जानी चाहिये क्योंकि सब जगह स्फोटका संस्कार बन गया।

स्फोटसंस्कारके स्वरूपके स्फोटविषयक ज्ञानोत्पादकत्व विकल्पोंका निराकरण— अब और भी बात सुनो। स्फोटके संस्कारका अर्थ क्या है? क्या स्फोट विषयक ज्ञानका उत्पन्न करना यह स्फोट संस्कारका अर्थ है या आवरणको दूर कर देना यह स्फोट संस्कारका अर्थ है? यदि कहो कि आवरणको दूर कर देनेका ही नाम स्फोट संस्कार है तब तो एक जगह एक समय आवरणका विनाश हुआ तो सर्व देशोंमें रहने वाले सर्व प्राणी सब समय उसको प्राप्त करलें क्योंकि स्फोट तो व्यापक और नित्य है। नित्य और व्यापकरूपसे माने गये निरावरण इस स्फोटकी सब जगह सब समय उपलब्धि हो जाना चाहिये। तो जब स्फोट नित्य है। व्यापक है और अब हो गया निरावरण आवरण रहा नहीं तो अब उसमें कौन सी कमी रही कि जो सब जगह सब समय उसकी उपलब्धियां न हों। और, यदि स्फोटकी अनुपलब्धिका स्वभाव पड़ा है कि उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती तब फिर किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी जगह किसी भी समय किसी भी पुरुषके द्वारा स्फोटकी उपलब्धि न होना चाहिये, जो नित्य व्यापी होता है उसका एक स्वभाव होता है। स्फोट नित्य और व्यापी है। तो यह बतलावो कि वह उपलभ्य स्वभाव वाला है या अनुपलभ्य स्वभाव वाला है यदि अनुपलभ्य स्वभाव वाला है तो फिर स्फोटकी उपलब्धि कभी भी किसी भी समय किसी भी पुरुषको नहीं हो सकती। और, यदि स्फोट उपलभ्य स्वभाव वाला है और हो गया निरावरण तो अब कौन सी ऐसी गुंजाइश है कि स्फोट सब जगह सब समय सब प्राणियोंको व्यक्त नहीं हो।

आवरणापनयनरूप स्फोट संस्कारका निराकरण — यदि कहो कि आवरणके हट नेका नाम तो है स्फोट संस्कार लेकिन आवरणका हटना एक देशसे होता है। सर्वात्मक रूपसे आवरणका अपगम नहीं किया जाता। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर यों तो जो स्फोट एक माना है तो उसमें सावयवपना लग जायगा। स्फोट अब निरंश न रह सकेगा क्योंकि स्फोटके एक देशमें तो आवरणके न होनेसे वह अनावृत बन गया और अनेक जगह आवृत होनेसे ढका हुआ है। तो यों एक देशसे आवरणका अपनयन माननेपर उस स्फोटमें दो भेद हो जायेंगे आवृत स्फोट और अनावृत स्फोट। तो स्फोटके कुछ अवयव आवृत हो गए और कुछ अनावृत हो गए। तो यों स्फोटमें सावयवताका दोष आ जायगा। यदि कहो कि स्फोट तो निरंश है, भाग रहित है अत: एक देशमें आवृत होनेपर सर्वत्र अनावृत ही माना जा रहा है, तो वही दोष आ गया कि फिर सभी देशोंमे, सभी समयोंमें, सभी प्राणियोंको स्फोटकी उपलब्धि होना चाहिये। तब जैसे निरवयव होनेसे एक जगह अनावृत होकर सब जगह अनावृत हो जाता है तो इसी प्रकार निरवयव होनेके ही कारण अगर एक जगह आवृत हो जाता है तो सब जगह आवृत होना चाहिये। तो आवरणका अपगमरूप स्फोट संस्कार मानने पर यह दोष आता है कि या तो वह स्फोट सब जगह सब जीवोंको सब समय उपलब्ध होना चाहिये अथवा किसी भी समय कहीं भी किसी भी जीवको उपलब्ध न होना चाहिये।

स्फोटविषयसंवेदनोत्पादरूप स्फोटसंस्कारकी अयुक्तता — अब शंकाकार कहता है कि पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोट संस्कार किया उसका अर्थ आवरणका अपनयन नहीं है किन्तु स्फोट विषयक सम्वेदनका उत्पाद होना है अर्थात् स्फोटसंस्कार यह कहलाया कि स्फोटविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति हो गयी। उत्तरमें कहते हैं कि यह विकल्प भी अयुक्त है। जैसे कि शङ्काकारने अपने पूर्वपक्षमें कहा था कि वर्ण अर्थकी प्रतिपत्तिके जनक नहीं हो सकते। वर्णोंमें अर्थकी प्रतिपत्तिके जनक होनेका सामर्थ्य नहीं है। सो यही बात शंकाकारके इस द्वितीय विकल्पमें आती है कि वर्णोंका सामर्थ्य स्फोटकी प्रतिपत्ति उत्पन्न करनेमें भी नहीं है। जो भी दोष दोनों वह दोनों जगह समान हो सकता है। न्याय दोनों जगह समान बैठ सकता है। जैसे कहा था कि वर्ण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यदि अर्थकी प्रतिपत्ति करता है तो वह समस्त समुदित होकर करता है या व्यस्त होकर करता है ? ऐसे ही ये सब दोष स्फोटविषयक सम्वेदनकी उत्पत्तिमें भी घटित होते हैं। वे वर्ण यदि स्फोटविषयक सम्वेदनकी उत्पत्तिरूप संस्कारको करते हैं तो व्यक्त होकर वह संस्कार करता है या समुदित होकर ? दोनों पक्षोंमें विकल्पोंमें स्फोट संस्कारकी सिद्धि नहीं होती।

स्फोटाभिव्यक्तिकी विधिपर शङ्का-समाधान—अब शङ्काकार कहता है कि सुनिये ! वर्णोंके द्वारा पदादिकके स्फोटकी अभिव्यक्ति किस तरह होगी। इस प्रकार होगी कि पूर्व वर्णके सुननेसे जो ज्ञान हुआ उस ज्ञानने जिसमें संकार उत्पन्न किया ऐसे पुरुषके जब अन्तिम वर्णके स्रवण होनेपर ज्ञान होता है तो उस ज्ञानके अनन्तर ही पदादि स्फोटकी अभिव्यक्ति हो जाती है। तो स्फोटकी अभिव्यक्ति तो हुई अन्तिम वर्णसे लेकिन उस पुरुषके अन्तिम वर्ण ज्ञानसे स्फोटकी व्यक्ति हुई है जिसने कि पूर्व वर्णके श्रवणसे संस्कार उत्पन्न कर लिया था इस प्रकार स्फोटकी अभिव्यक्ति माननेपर वह दोष नहीं आता कि वर्णोंसे यदि संस्कार किया गया तो व्यक्त वर्णोंसे किया गया या समुदित समस्त वर्णोंसे किया गया ? उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कथन भी असंगत है। पदार्थोंकी प्रतिपत्ति ही इसी प्रकारसे हुआ करती है, अर्थात् पूर्व वर्णके सुननेसे जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस ज्ञानसे जिसने संस्कार पाया है ऐसा पुरुष जब अन्तिम वर्णको सुनता है तो उसके ज्ञानके बाद ही पदार्थकी प्रतिपत्ति हो जाती है और यह बात सर्व साधारण जनोंके सुप्रसिद्ध है फिर स्फोटकी कल्पना करना अनर्थक है। वर्ण और अर्थप्रतिपत्ति, उसके बीचमें स्फोटका डालना अनावश्यक है। अर्थका ज्ञान कराने वाला तो आखिर पुरुष ही है। यह जीव पूर्व वर्णोंसे जो ज्ञान उत्पन्न करता है उससे तो संस्कार बना है जो कि धारणा नामक मतिज्ञानका चतुर्थ भेद है। यों संस्कार बन जाने पर जब अन्तिम वर्णको सुनते हैं तो उस अन्तिम वर्णके ज्ञानके बाद चूँकि पहिले संस्कार सब थे, उन संस्कारोंसे विशिष्ट अन्तिम वर्ण ज्ञान है, उससे पदार्थका परिज्ञान हो जाता है। स्फोटकी फिर बीचमें आवश्यकता क्या है ?

स्फोटकी चेतनस्वरूपताका प्रतिपादन—और देखिये पदार्थका जो परिज्ञान हुआ है वह परिज्ञान किसमें हुआ है ? आत्मामें। और, उस पदार्थके परिज्ञान की सामर्थ्य किसमें हुई ? आत्मामें। तो चैतन्यस्वरूप आत्माको छोड़कर अन्य किसी पदार्थमें अचेतनमें अर्थके परिज्ञानकी सामर्थ्य असम्भव ही है। इस कारणसे चैतन्यात्मक ही यह पुरुष विशिष्ट शक्तियुक्त हुआ स्फोट कहलायेगा। स्फोट किस वस्तुका नाम है इसका उत्तर शंकाकारके यहां क्या रखा है ? स्फोट इस ही जीवका नाम है, जिस जीवने पूर्व वर्णोंके बोलने अथवा श्रवणसे उनका ज्ञान उत्पन्न किया। फिर पूर्व वर्णोंके ज्ञानका संस्कार धारण किया। वही पुरुष जब अन्तिम वर्णको बोलता है सुनता है तो उसके ज्ञानके बाद ही उस पुरुषके अर्थका परिज्ञान हुआ। तो अर्थका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिज्ञान किसमें प्रकट हुआ ? जीवमें । इसलिए जीव ही स्फोट कहलायेगा । स्फोट शब्दका अर्थ भी ऐसा ही है । 'स्फुटति प्रकटी भवति अर्थः यस्मिन् स स्फोटः ।' जहां पदार्थ स्फुटित हो प्रकट हो उसका ही नाम स्फोट है । सो वह चैतन्यस्वरूप आत्मा ही स्फोट हुआ । जिसका सीधा अर्थ हुआ कि इस जीवमें ज्ञान स्वभाव मौजूद है और इस सब अर्थको एक साथ जानले ऐसा उसमें प्रताप है । और, इसपर ज्ञानावरण कर्म छाया हुआ है । जितनी प्रकारके ज्ञान इस जीवमें सम्भव हो सकते हैं उतनी ही प्रकार से ज्ञानावरण बन सकते हैं । तो पदोंका अर्थ होता है उनका भी ज्ञान किया जाता है उस ज्ञानके भी आवरण होते हैं । तो जिस पदार्थका बोध किया जाता है उस पदार्थके ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे और साथ ही वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे युक्त जो आत्मा है उसका ही नाम पदस्फोट है । आत्मा अल्पज्ञ अवस्था में जो पदार्थोंका परिज्ञान करता है उस पदार्थमें ज्ञानावरणका क्षयोपशम और वीर्यान्तरायका क्षयोपशम ये दो हुआ करते हैं । वीर्यान्तराय क्षयोपशमका अर्थ यह है कि उस पदार्थके जाननेकी शक्ति इसके प्रकट हुई है और पदार्थ ज्ञानावरणके क्षयोपशमका अर्थ है कि उस पदार्थका ज्ञान जो किया जाता है उसपर आवरणका वह भी आवरण दूर हो गया तो अब पदार्थका ज्ञान हो गया तो यह हुआ पदस्फोट इसी तरह वाक्यस्फोटका भी अर्थ कर लीजिये । वाक्योंका अर्थ होता है । पदोंके अर्थमें तो एक पदार्थ जाना गया जिस पदका कि अर्थ किया गया । वाक्यमें होते हैं नानापद शब्दरूप और क्रियारूप भी. जिनके मेलसे अर्थ यह निकलता है कि कुछ कहा गया । उद्देश्य और विधेय दोनों प्रकट हो जाते हैं । तो वाक्योंका भी अर्थ होता है, उस वाक्यार्थका ज्ञान किया जाता है और जितने वाक्यार्थके ज्ञान हैं ज्ञान न होनेकी स्थितिमें, उतने ही उसके ज्ञानावरण हैं । तो वाक्यार्थ ज्ञानावरणका क्षयोपशमोंसे युक्त उपयोगपरिणत चेतन वाक्यस्फोट होता है । क्योंकि भावयुक्त ज्ञानसे परिणत आत्माको इस प्रकार शब्दोंसे कहनेमें कोई विरोध नहीं है ।

अर्थप्रतिपत्तिके प्रसङ्गमें तीन सतोंका विवरण— अब देखिये ! अर्थज्ञान के सिलसिलेमें यहां तीन सतोंसे सम्बन्ध बना - शब्दसत्, अर्थसत् और ज्ञानविशिष्ट आत्मासत् । स्फोट नामका सत् और क्या हो सकता है ? शब्दको तो स्फोट कहते नहीं, अर्थको स्फोट कहते नहीं, तब फिर वह स्फोट इन दोसे अलग तीसरा क्या है ? वह स्फोट यही विशिष्ट परिणत चैतन्यात्मक पदार्थ है क्योंकि पदार्थोंका परिज्ञान इस ही आत्मामें स्फुटित होता है । तो इसका फिर स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि जितने वर्णोंके बाद किसी पदार्थका ज्ञान होता है तो उस पदार्थने पूर्व वर्णोंको बोला, उससे किया उनका परिज्ञान, उस परिज्ञानने बनाया संस्कार उस संस्कारसे युक्त होकर इस पुरुष ने जब अन्तिम वर्ण बोला तो संस्कार सहित अन्तिम वर्णके ज्ञानसे वह अर्थ वाच्य हो जाता है । तो उन वर्णोंके जरियेसे इस आत्मामें ही कोई अभिव्यक्ति हुई है, जैसा ज्ञानावरणका क्षयोपशम था, उसका उपयोग बना है तो यों कहा कि उन वर्णोंके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण इन पुद्गलोंका उपयोग बनता है और वही संस्कार कहलाया। तो यों उपयोगसे इसका संस्कार बनता है. फिर वही आत्मा उन सब वर्णोंके पश्चात् पदार्थका परिज्ञान कर लेता है। सो यहां ये तीन सत् हुये सत्के मायने उत्पादव्ययध्रौव्य वाला पदार्थ। शब्द स्वयं द्रव्य नहीं है, पदार्थ नहीं है किन्तु वह भाषा वर्गणा जातिके पुद्गल स्कंध का द्रव्यपरिणमन है। सो परिणमन उस स्कंधका ही तो है, सो वह सत्रूप है। जिस पदार्थके सम्बन्धमें परिज्ञान किया जाता है वह पदार्थ भी सत्रूप है और उन वर्णोंके निमित्तसे अर्थका परिज्ञान करने वाला जो आत्मा है वह भी सत् है। तो सत् वस्तुभूत पदार्थके सम्बन्धमें कुछ कहना तो युक्त है किन्तु जो सत् ही नहीं है. कुछ कल्पना की जा रही है, सत्से निराला सोचा जा रहा है वह तो अवस्तुरूप है। तो स्फोट मानने वालोंको स्फोट किसी न किसी सत्का अङ्ग मानना चाहिये। अन्यथा स्फोट अवस्तु बन जायगा। और, जब स्फोटको किसी सत्का अङ्ग मानने चलोगे तो विवेक भी करना होगा। वर्णोंका ही नाम तो स्फोट नहीं है। पदार्थका नाम तो स्फोट नहीं है। तब यह बह बीचका स्फोट क्या हुआ? जैसे आत्मामें अर्थ प्रकट होनेकी है। जिस आत्मामें अर्थकी प्रतिपत्तिका पुरुषार्थ बन रहा है वही आत्मा स्फोट कहलाता है। तो स्फोटकी अभिव्यक्ति हुई इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मामें उपयोगकी अभिव्यक्ति हुई पदार्थके ज्ञान करनेका क्षयोपशम तो था, पर उपयोग और बन गया तब वर्णोंसे अर्थ का परिज्ञान कर लिया। ये सब अर्थ रीतिके उपादान हैं इनमें कोई सन्देह न करना और न किसी अन्य स्फोट आदिककी कल्पना करना।

वायुमें स्फोटाभिव्यञ्जकताका अभाव— शंकाकार कहता है कि वायु स्फोट की व्यञ्जक हुआ करते हैं वर्ण स्फोटके व्यञ्जक नहीं होते तो न सही। वायुका अर्थ है शब्द बोलते हुएमें जो ध्वनियां निकलती हैं, हवा निकलती है ऐसी वायु स्फोटका अभिव्यञ्जन करती है। यहाँ शंकाकारने यह इस कारणसे कहा कि वर्ण तो है नित्य व्यापक। वर्णोंसे स्फोटकी व्यक्ति माननेपर यह दोष आता था कि स्फोट फिर सदा-काल रहना चाहिये। स्फोटका अर्थ है वर्ण। शब्द बोलनेके बाद जो दिमागमें एक अर्थ ज्ञान होता है उस अर्थका नाम है स्फोट। तो उस स्फोटकी अभिव्यक्ति वायुसे है यों शंकाकार बता रहा है, किन्तु वह भी एक अयुक्त बात है। जैसे शब्दसे स्फोटकी अभिव्यक्ति नहीं बनती इसी प्रकार वायुसे भी स्फोटकी अभिव्यक्ति नहीं बनती और यदि वायु पदस्फोटकी व्यञ्जक हो जाय तो वर्णोंकी कल्पना करना ही व्यर्थ है। वर्ण फिर किस काम आयेंगे? सिद्धान्तकी बात यह है कि जो अपन शब्द बोलते हैं उन शब्दोंको सुनकर पदार्थका बोध होता है कि इससे यह पदार्थ कहा और तभी हमारे शास्त्र आगमके लक्षण ठीक बनते हैं। इसमें शब्दोंका आकार है उसे हम बोलते हैं अथवा मनमें रहते हैं तो उन शब्दोंको बोलकर एकदम दिमागमें पदार्थ आ जाता है। जैसे कहा गाय। तो गाय शब्द सुनते ही दूध देने वाले जानवरका बोध हो जाता है। तो शब्दोंसे पदार्थ जाने जाते हैं लेकिन यहां शंकाकार यह कह रहा है कि शब्दोंसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थ नही जाने जाते किन्तु शब्दोंसे पहिले पदादिकोंका अर्थ समझा जाता है उसे कहते है स्फोट और फिर उस स्फोटसे पदार्थ जाने जाते हैं। तो शब्द और पदार्थ इन दोनोंके बीच जो स्फोट डाला है उसके सम्बन्धमें विचार चल रहा है। यदि वायु स्फोटकी व्यञ्जक हो जाय तो फिर शब्दोंकी कल्पना करना ही व्यर्थ है और स्फोटकी अभिव्यक्ति होनेपर जब पदार्थका ज्ञान हो गया तब वर्णोंका कोई उपकार ही न रहा दूसरी बात यह है कि स्फोटके हं नेपर ही, स्फोट यदि वायुसे पहिले है तो स्फोटकी अभिव्यक्ति कही जायगी। क्योंकि स्फोटकी अभिव्यक्ति तब मानी जायगी कि जब वायुके उत्पन्न होनेसे पहिले स्फोट मौजूद हो और फिर वायु उसकी अभिव्यक्ति करे तब तो स्फोटकी अभिव्यक्ति है जैसे कि बहुतसे बर्तन रखे हैं, उनके ऊपर रख दिया कपड़ा तो कपड़ेने बर्तनको ढक दिया। अब कपड़ा उघाड़ते हैं तो वे सब बर्तन दिख जाते हैं तो इसको कहेंगे अभिव्यक्ति। तो कपड़ा उघाड़नेसे पहिले वे सारे बर्तन हैं तब तो उन्हें अभिव्यक्ति माना जायगा, इसी प्रकार वर्णोंसे अभिव्यक्ति हो तब वायुसे अभिव्यक्ति हो तब, दोनों ही दशावोंमें वर्ण और वायुसे पहिले स्फोट होना चाहिये तब तो उसकी व्यक्ति बनेगी पर स्फोटका सद्भाव किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नही होता। अर्थात् वर्ण बोलनेसे पहिले या वायु आनेसे पहिले स्फोट होता इसकी सिद्धि कुछ नही है। और जब तक वर्ण और वायुसे उत्पादकसे पहिले स्फोटकी सत्ता न मानी जाय जब तक अभिव्यक्ति भी नही कहला सकती।

वर्णोंके निमित्तसे अर्थप्रतिपत्तिकी विधि—जब वायुसे स्फोटकी अभिव्यक्ति सिद्ध न हो सकी तो इससे यह भी निराकृत हो जाता है जो कि यह कहा है कि पूर्व वर्णसे अथवा वायुसे जब संस्कार उत्पन्न हो जाता है तब अन्तिम वर्णसे या या अन्तिम वायुके साथ जब सबका उच्चारण बन गया तब ज्ञानमें वह स्फोट प्रतिभासमान होता है यह बात यों निराकृत होती है कि वर्णोंसे पहिले, ध्वनियोंसे पहिले स्फोटकी सत्ता होना चाहिये तब तो स्फोटका आवरण कहलाये और स्फोटकी अभिव्यक्ति कहलाये। यह कहना भी अयुक्त है कि अगर अर्थप्रतिपत्ति अनित्य है। वर्ण अनित्य है तो अर्थकी प्रतिपत्ति कैसे बन सकती है। अरे, नित्यत्वके बिना भी पदार्थकी प्रतिपत्ति होती है इस बातको वर्णके स्वरूपके विचार करते समय बताया ही था कि वर्ण नष्ट हो गया। तो वर्णसे किस तरह पदार्थ जाना जाता है? शंकाकार यह कह रहा था कि जैसे पुस्तक शब्द बोला तो पुस्तक शब्दमें कितने अक्षर हैं, प् उ स् त् अ क् अ ७ अक्षर हैं तो जब प् उ आदिक बोले गए तो बोलते ही वे वर्ण नष्ट हो गए। बोलते-बोलते जब अन्तिम वर्ण बोला अ तो उससे पहिले ६ वर्ण बोले जा चुके थे और खतम हो गए। तो जब वे वर्ण खतम हो गए और अब केवल अ ही रह गया अंतिम तो उस अ से पुस्तक पदार्थका ज्ञान कैसे हो सकता है? शंकाकारका कहना यों युक्त नहीं है कि वे वर्ण तो खतम हो गये जो पहिले बोले गये थे, किन्तु उन वर्णोंका ज्ञान तो कर लिया गया था। जब वर्ण बोला था। और, वर्ण भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

खतम हो गया लेकिन उससे संस्कार बन गया है कि हम ये ये वर्ण बोल चुके हैं। ये मेरे ध्यानमें है और इन ध्यानोंके साथ जब आखिरी अक्षर अ बोल चुके तब स्मरण में पूरे शब्द हैं पुस्तक। फिर उस शब्दसे संकेतके अनुसार पत्रादिक पदार्थोंका बोध हो जाता है। तो इस तरह वर्ण यद्यपि नष्ट हो जाते हैं शब्द अनित्य हैं तो भी जो वक्ता है, श्रोता है उस पुरुषके तो संस्कार रहता है, उस संस्कारके कारण स्मृति रहती है, उससे फिर पदार्थका ज्ञान होता है।

अनेकोंमें भी एक प्रतिभासकी साधनता— अब शंकाकारने जो यह कहा था कि सुननेके व्यापारके बाद अर्थात् सुननेके बाद बहुत बहुत शब्द जो बोले गए उन से अभिन्न एक अर्थका ही तो बोध होता है तो वह बोध पूर्ण विषयक तो नहीं रहा। जैसे पुस्तकमें ७ वर्ण हैं। ७ वर्णोंको हमने सुना तो सुन करके वर्ण तो हैं वे ७ मगर जानी गई चीज एक! जैसे चन्द्रमा कहा तो चन्द्रमामें ७ वर्ण हैं बहुत मगर उनसे जाना गया एक ही चन्द्रमा। तो एक चन्द्रमाका विज्ञान वर्णविषयक नहीं है क्योंकि वर्ण हैं परस्पर एक दूसरेसे अलग। वे अलग वर्ण एकका प्रतिभास नहीं कर सकते। सब स्फोट मानना ही चाहिए कि वर्णोंसे जो हुआ बुद्धिमें एक प्रतिभास स्फोट, उससे जाना गया पदार्थ। उत्तरमें कहते हैं कि ये भी असार बातें हैं। घट आदिक शब्दोंमें जैसे घट बोला तो घट मायने घड़ा तो घटमें दो शब्द हैं मानलो घ और ट और ये दोनों भी एक दूसरेसे अलग हैं और इनका काल भी अलग है। घ का उच्चारण पहिले हुआ ट का उच्चारण बादमें हुआ किन्तु उसकी प्रत्यासत्ति (निकट होना) तो है। घ के बाद हो तो एकदम ट बोला गया। बीचमें और कोई स्थान तो नहीं अड़ा, तो उस प्रत्यासत्तिसे युक्त वर्णके सिवाय स्फोट स्मक और कुछ चीज नहीं है। अर्थका प्रकाश करने वाला जो एक अवस्था का उपयोग है वही तो स्फोट है और प्रत्यक्ष ज्ञान के विषयरूपसे वही प्रतिभासमान होता है और यह बात नहीं कि अभिन्न प्रतिभास होनेसे अभिन्न अर्थका व्यवस्था हुई। जैसे कि कोई बहुत दूरसे सड़कपर बहुत दूरके वृक्ष दिखनेमें आ रहे तो वे सारे वृक्ष एकसा लग रहे हैं। हैं वे वृक्ष १०-२० मगर दूरसे दिखनेके कारण वे सब वृक्ष एकसे लग रहे हैं। तो एक प्रतिभास होनेसे क्या वे एक मान लिए जायेंगे? नहीं माने जायेंगे! इसी तरह अभिन्न प्रतिभास होनेसे अभिन्न अर्थकी ही व्यवस्थायें की जायें सो तो बात नहीं। यदि कहा कि दृष्टान्तमें जो वृक्षकी बात कही कि दूरसे वृक्ष तो दीखे बीसों मगर वे इकट्ठे घने दीखे तो उससे एक मानना पड़ रहा है पर एक नहीं है। तो इस समझनेमें तो बाधा आती है बादमें जब निकट पहुंचते हैं तो वहां जान जाते हैं कि यहां तो वृक्ष बीसों हैं, एक तो नहीं है कहते हैं कि यही बात तो स्फोटके प्रतिभासमें भी है। वहांपर भी बाधा आती है। ऐसे निरवयव अक्रम नित्य व्यापक धर्मसे सहित स्फोट कभी भी ज्ञानमें नहीं आ रहा। ज्ञानमें जब आता है तो पदार्थ आता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदादि स्फोटको हठमें गंध स्फोट रसस्फोट आदि अनेक स्फोटोंका प्रसंग पदादि स्फोटकी बात कहोगे तो शब्द स्फोटकी तरह गंध स्फोट रूप स्फोट कितने ही स्फोट मानने पड़ेंगे जिससे कि पदार्थका ज्ञान होता हो। जैसे कि शब्द जिसमें संकेत किये गए ऐसे पुरुषके अर्थ प्रतिपत्तिका कारण है इसी प्रकार गंधसे भी संकेत किए गए ऐसे पुरुषके अर्थ प्रतिपत्तिके कारण हैं। इत्र सूंघकर पुरुष जान जाते हैं कि यह केवड़ेका इत्र है और यह गुलाबका इत्र है, क्योंकि इस प्रकार संकेतका बोध हुआ तो इसका और इस प्रकारका तो इसका कहलाया। यों रूपमें, स्पर्शमें शब्द संकेत बन जायगा। तो जैसे शब्द स्फोट माना है इसी प्रकार गंध स्फोट और रूप स्फोट आदिक भी मान लेने चाहियें। जब एक गंधको सूंघकर, स्पर्शको छूकर रसको चखकर इस प्रकारका अर्थ समझना चाहें तो स्फोट वहाँ कितने ही बन जायेंगे। स्फोटकी व्यवस्था युक्त नहीं है। रूप देखा और झट रूपी पदार्थका ज्ञान हो गया, गंध सूंघा और गंधवान पदार्थका ज्ञान हो गया इसी तरह शब्द सुना तो शब्द के अर्थ वाला पदार्थ ज्ञात हो जाता है। यह कहा गया है और जिसको संकेत नहीं है वह नहीं समझ सकता है। शब्द तो सुन लेगा, पर इस शब्दके द्वारा क्या बात आयी वह न समझ सकेगे। जैसे जिसको रूपका संकेत नहीं है वह रूपसे तो देख लेगा। पर यह किसका रूप है, यह क्या चीज कहलाती है इसका बोध उसे न होगा जिसको संकेत विदित नहीं है। गंध आदिकमें भी यह बात है। गंध आयगी। इत्र तो सूंघ लेंगे पर यह किसका गंध है यह बोध न हो सकेगा क्योंकि उसको बोधका संकेत ही नहीं मिला हुआ है। तो इस तरह संकेत ग्रहण करने वाले पुरुषोंको कभी उस प्रकारके गंधकी उपलब्धि होती है तो वह निर्णय कर लेता कि यह ऐसी गंध वाला अमुक पदार्थ है। तो गंध विशेषका अभिव्यंग हुआ गंध स्फोट तो वह भी मान लो। जैसे वर्ण विशेषसे व्यक्त होता है पद स्फोट और पदस्फोटसे अर्थ जाना जाता है इसी तरह गंध विशेष। गंध स्फोट व्यक्त हुआ और गंधस्फोटसे किसका गंध है वह पदार्थ जाना जाता इस तरह तो कहीं भी वस्तुसे शीघ्र वस्तुका बोध नहीं हो सकता। बीचमें प्रत्येकका स्फोट मानना पड़ेगा इससे स्फोटकी बात ठीक नहीं है। शब्द बनते जाते हैं उनसे पदार्थ ज्ञान लिया जायगा।

आगमके लक्षण विवरणसे सम्बन्धित चर्चा—यह प्रकरण किस बातका चल रहा था कि आगमका लक्षण कहा जा रहा था। शास्त्र उसे कहते हैं जो सर्वज्ञ देवके वचनके कारणसे परम्परासे चले आये हों। तो शास्त्रके वचनोंका मूल वक्ता सर्वज्ञदेव हैं इस कारण ये शास्त्र प्रमाण हैं कभी-कभी किसी शास्त्रके बीचमें पण्डित लोग या कोई भी दुराग्रही पुरुष अपनी कोई गड़बड़ बात भी लिख देते हैं लेकिन समझदार पुरुष उनमें झट समझ जाते हैं कि इतनी तो यह गड़बड़ बात है और यह सत्य बात है। यह भगवान द्वारा प्रणीत है और यह किसीके द्वारा मिलायी हुई है। बहुत ही जल्दी समझनेके लिए यह वाक्य ठीक भगवानकी परम्परासे चला आया है या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसीने बीचमें गढ़ दिया है उसकी पहिचान यह है कि वाक्यसे राग करनेकी प्रेरणा मिलती है तो वह प्रभुवाक्य नहीं है, वह वाक्य यदि वस्तु स्वरूपके विपरीत लिखा गया हो तो भी प्रभुवाक्य नहीं है। प्रभुके वचन निर्विरोध होते हैं। पहिले कुछ कहा, बादमें कुछ कहा ऐसा पूर्वापर विरोध नहीं होता और ज्ञान व वैराग्यके बढ़ाने वाला होता है। जिसमें मोह छोड़नेकी रागद्वेष विषय कषाय इच्छायें छोड़नेकी प्रेरणा भरी हो समझा करके, यथार्थ ज्ञान कराकर, समझिये कि वह प्रभुवाक्यकी परम्परा है। तो शास्त्रकी प्रमाणता तो इस कारण बनती है कि शास्त्रका जो मूल वक्ता है वह सर्वज्ञ देव है पर मीमांसक सिद्धान्तमें ऐसा नहीं माना है। उनके शास्त्र सर्वज्ञदेव द्वारा रचे गए नहीं हैं किन्तु अनादिसे चले आये मानते हैं अपौरुषेय मानते और वर्ण हैं शब्द इनको भी अपौरुषेय नित्य मानते हैं। तब यह शंका होना स्वाभाविक है कि जब शब्द नित्य है तो सदा क्यों नहीं ये प्रकट होते हैं ? तो उसका कुछ जवाब तो देना पड़ेगा। जवाब यह ढूंढा कि शब्द तो नित्य है। जैसे आकाश सदा रहने वाला है तो आकाशका गुण शब्द और शब्द भी सदा रहने वाला है लेकिन उनकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। शब्द भी सदा रहने वाला है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। तो यों शब्द की भी अभिव्यक्ति मानना पड़ेगा। और शब्द सीधे पदार्थका ज्ञान नहीं कराते ऐसे शब्द से स्फोटकी अभिव्यक्ति माननी पड़ी और फिर स्फोटसे पदार्थकी प्रतीति मानी है।

प्रसक्त विविध स्फोटोंका विवरण—यहां स्फोटके बारेमें कह रहे हैं कि यदि स्फोट बीचसे माना है तो शब्द और पदार्थके बीच ही क्यों माना ? गंध और पदार्थके बीच भी स्फोट, अर्थ, रूप और पदार्थके बीच भी स्फोट, यों अनेक स्फोट मानने पड़ेंगे। यदि कहो कि गंध स्फोट नहीं होता तथा यों ही हस्तस्फोट, पादस्फोट, इन्द्रियस्फोट आदिक ये सब केवल कल्पनामात्र हैं। यों पदस्फोट भी कल्पनामात्र है। क्योंकि जैसे तुम पदस्फोटका स्वरूप बनाते हो इसी प्रकार इन स्फोटोंका भी तो स्वरूप बनता है। जैसे हस्तस्फोट क्या चीज हुई ? कोई नृत्यकार है और वह अपने हस्त पैर गले आदिक अवयवोंकी क्रिया करेगा है तो जहां उसने हस्तकी नाना क्रियायें कीं तो उस क्रिया विशेषसे व्यक्त हुआ हस्त स्फोट। पाद स्फोट क्या है? जैसे नृत्य कारने नृत्यमें बड़ा भ्रमण किया तो उस भ्रमणके समयमें उसके पाद स्फोट हुआ और उसकी नृत्य कलामें हाथ और पैरका एक साथ व्यापार होता है उस व्यापारका नाम है करणस्फोट। और जब यह करण स्फोट लगातार हुआ, दुबारा हुआ तो दो करणरूप मात्रिका समूह बनानेमें, भ्रमणमें समस्त स्फोटोंका समस्त दृष्टिको लेकर जो समझा गया है वह अंगहार स्फोट है। तो इसमें पदस्फोटको तो मानना कि यह सही है और शेष स्फोटोंको कहना कि यह कुछ नहीं है तो यह तो तुम्हारी कल्पनामात्र है, क्योंकि अपने अपने अवयवोंसे जो व्यक्त होते हैं ऐसे और अपने अभिनेय अर्थकी प्रतिपत्तिके कारणभूत हैं वे स्फोट, उनका निराकरण नहीं किया जा सकता। और यदि उनका निराकरण करना हो तो शब्द स्फोटका अभिप्राय भी दूरसे ही छोड़

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देना चाहिये । सब बातें दोनों जगह समान बैठती हैं। यदि कहो कि अवयवोंकी क्रियायें उससे जो अभिनय करना है, जो बात अभिनयमें दिखाना है वह ही पदार्थ तो अवयवी अवयवकी क्रियासे अभिधेय जो अर्थ हुआ उससे अलग अन्य कुछ नहीं जैसे हस्तस्फोट, पादस्फोट आदिक नाम धरा । तो उत्तरमें कहते हैं कि यही बात तो प्रकृतमें है। वर्णोंका जो अर्थ हुआ उस अर्थके सिवाय अन्य कुछ स्फोटरूप चीज प्रतिभासमें नहीं आती । वर्ण है । अर्थ है फिर स्फोट क्या चीज रही ? तिसपर भी यदि स्फोटको वस्तुभूत मानते हो तब फिर ये नाना स्फोट भी वस्तुभूत हो जायेंगे । तो इस प्रकार जब स्फोट होका विचार करना है तो वह कुछ सिद्ध नहीं होता ।

आगमज्ञानके प्रसङ्गमें तीन वस्तुवोंकी ज्ञेयता –इस प्रसंगमें तो और तीन वस्तुवोंका सही ज्ञान कर लीजिये शब्द वस्तु आत्म वस्तु और पदार्थ वस्तु । शब्द वस्तु तो है वाचक, पदार्थ वस्तु है वाच्य और आत्मवस्तु है समझने वाला तो वह पुरुष एक है ही । तो उसकी बात सुप्रसिद्ध ही है। वही तो व्यवस्था करने वाला है। किस शब्दसे कौनसा अर्थ जाना गया उसकी व्यवस्था कौन करता है ? यह आत्मा । तो शब्दोंसे अर्थका प्रतिबोध किया आत्माने । पर शब्द और अर्थ का परस्परमें क्या सम्बन्ध है। शब्दोंका क्या संकेत बनता है, प्रसंग तो यह था । याने वचनके निमित्तसे अर्थका ज्ञान होता है, चर्चा तो यों चल रही थी ज्ञान करने वाला आत्मा है और आत्मा हितके लिए ही समस्त दर्शनोंकी रचना हुई । वह तो ज्ञाता है । वह किस तरह जानता है । शब्दों द्वारा, पदार्थसे । चर्चा तो यह है । इस बीच स्फोटकी कथा जबरन है। तो जब शब्द स्फोटके स्वरूपपर विचार करते हैं तो वह अवस्तुरूप है । वस्तुरूप तो यह दुनिया है । शब्द यों वस्तु हैं वे भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कंधोंके परिणमन हैं । वे वस्तुभूत हैं चीज हैं कुछ । और वे मूर्तिक हैं। कर्णोंमें आते हैं । कर्णोंपर उनका आघात होता है, और उन मूर्त शब्दोंमें जो संकेत बनाया है । बनाया जीवने तो किस संकेतसे कि पदार्थका बोध होता है बात तो यह कही जा रही है अर्थात् बात तो इन तीन वस्तुवोंमेंसे दो वस्तुवोंकी की जा रही है शब्दवस्तु और अर्थवस्तु । स्फोट अलगसे क्या चीज रही ? कुछ भी नहीं । शब्द उत्पन्न हुये और उनको सुना इस जीवने और इसने उन शब्दोंका संकेत समझा । उन संकेतोंके अनुसार पदार्थोंका ज्ञान किया । तो शब्द हुए और अर्थ हुए । ज्ञाता हुआ यह आत्मा । तो शब्द और अर्थसे अतिरिक्त कुछ तृतीय चीज मानोगे तो आत्मा मानो । उस ही का नाम यदि स्फोट रखा है तो रख लीजिये कुछ हर्ज नहीं पर उसका तात्पर्य यह होगा कि शब्दको सुनकर बालकर इस जीवने संकेतवश उन शब्दों द्वारा अमुक पदार्थको समझा तो वाच्य वाचक सम्बन्ध किसमें रहा ? शब्द और पदार्थमें । जब स्फोट स्वरूप कुछ अलग सिद्ध न हो सका तब यह स्फोट पदार्थके परिज्ञानका कारण है ऐसा कोई बुद्धिमानजन नहीं मान सकते । पदार्थकी प्रतिपत्ति का उपादानभूत कारण तो आत्मा है, क्योंकि प्रतिपत्ति है ज्ञानस्वरूप है यह आत्मा ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो अर्थ यह हुआ कि आत्माने पदार्थका ज्ञान किया, किन्तु वह ज्ञान किन शब्दोंको सुनकर हुआ। उन शब्दोंमें क्या संकेत भरा पड़ा इसका बोध करनेके लिये कहा गया है कि शब्द वाचक है और अर्थ वाच्य है। इसी कारण आगमके लक्षणमें स्फोट को नहीं माना, किन्तु आप्तके वचन आदिकके कारणसे जो अर्थज्ञान होता है उसको कहते हैं आगम। तो पदार्थोंकी प्रतिपत्तिका कारण स्फोट नहीं हुआ। निमित्त दृष्टि से पदार्थोंकी प्रतिपत्तिका कारण पद अथवा वाक्य ए ऐसा ही समझना चाहिये पदोंसे तो केवल व्यक्तिगत पदार्थ जाने गए। और वाक्योंसे उस पदार्थके सम्बन्धमें क्या कहा गया है, यों उद्देश्य और विधेय दोनोंकी बात वाक्यसे जानी जाती है तो पदार्थकी प्रतिपत्तिका निबंध पद और वाक्य है। इसीसे यह लक्षण बिल्कुल युक्त है कि आप्तके वचनादिकके निबंधनसे हुए अर्थके ज्ञानको आगम कहते हैं। आप्तके वचन अर्थादिकके संकेतादिकसे जो बना अर्थज्ञान है उसको आगम कहते हैं। यों पदवाक्य तो अर्थप्रतिपत्तिके कारण हैं स्फोट नहीं।

पद और वाक्यका लक्षण—यहाँ कोई जिज्ञासु प्रश्न कर रहा है कि फिर यह पद और वाक्य क्या चीज है जिसके कारण अर्थकी प्रतिपत्ति हुआ करती है? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि पद तो कहलाता है परस्परापेक्ष वर्णोंका निरपेक्ष समुदाय और वाक्य कहलाता है परस्परापेक्ष पदका निरपेक्ष समुदाय। इस लक्षणका भाव यह है कि जैसे कोई वाक्य बोला मैं मन्दिरको जाता हूँ—तो इसमें तीन पद हैं मैं, मन्दिरको जाता हूं तो एक पद कितना है? जैसे कि 'मैं"। तो 'मैं" में दो वर्ण हैं म् और ऐ। इसमें एक अनुस्वार भी है। तो ये दोनों वर्ण परस्पर अपेक्षा रख रहे हैं। सिर्फ म् या ऐ कहनेसे कुछ पदार्थ नहीं आया और 'मैं" के द्वारा क्या समझा गया यह जाननेके लिए दूसरे पदकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ी। "मैं" कहते ही मैं को जाना गया। इसमें पदान्तरकी अपेक्षा नहीं पड़ी। जब "मन्दिरको" शब्द बोला तो मन्दिरसे क्या अर्थ है, यह समझनेके लिए मन्दिर शब्द बोलना ही काफी है और उसमें जो म् अ न् द् इ र् अ ये जो ७ वर्ण पड़े हैं इन ७ वर्णोंकी अपेक्षाकी तो जरूरत रही मन्दिर शब्दका अर्थ समझनेके लिए, लेकिन अन्य शब्दकी अपेक्षा नहीं होती। मन्दिरका अर्थ जाननेके लिए मन्दिर शब्द ही काफी है। तो पद उसका नाम है कि जो अनेक वर्णोंकी अपेक्षा तो रखे, पर दूसरे पदमें रहने वाले वर्णोंकी अपेक्षा न करे। इसी प्रकार वाक्यको भी देखिये मैं मन्दिरको जाता हूं, यह एक वाक्य है। वहाँ पूजा करूँगा यह दूसरा वाक्य है। अब मैं मन्दिरको जाता हूं। इतनेका क्या भाव है यह समझनेके लिये तीनों पदोंकी अपेक्षा पड़ती है। यदि उन तीन पदोंमेंसे कोई भी पद कम कर दिया जाय तो वाक्य न बनेगा। जैसे मैं मन्दिरमें, इतनेका क्या अर्थ रहा? मैं जाता हूं, इससे पूरा भाव नहीं आया, जो कुछ कहना था। तो जितने शब्दोंके पदोंके बोलनेसे बोलने वालेका पूरा भाव जान लिया जाय, उतनेको वाक्य कहते हैं। मैं मन्दिरको जाता हूँ इतना कहनेसे वाक्यका पूरा भाव समझमें आ गया। अब इस वाक्यके भावको समझनेके लिए दूसरे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाक्य या पदकी अपेक्षा नही है। आगेका वाक्य नही बोला वहाँ पूजा करूँगा तो इसका तो अर्थ नही आया, पर पूर्व वाक्यका जो अभिप्राय है वह तो पूरा आ गया। तो मैं मन्दिरको जाता हूं—इस वाक्यमें जो तीन पद हैं उन तीन पदोंकी तो अपेक्षा रही पर अन्य वाक्यके पदोंकी अपेक्षा नही रही। तो यों परस्परापेक्ष पदोंका जो निरपेक्ष समुदाय है उसे वाक्य कहते हैं।

साधनवाक्यकी सिद्धिमें प्रश्नोत्तर शंकाकार यह कहता है कि इससे तो फिर साधन वाक्य कैसे घटित होगा ? साधन सिद्ध करनेमें जो अनुमानका प्रयोग होता है, उस साधन वाक्यमें यदि कोई इतना ही कहदे जैसे कि जो सत् हैं वे सब अनित्य हैं। जैसे घड़ा। और शब्द सत् है इतना ही किसीने बोला। तो इतना बोलने मात्रसे भी लोग सब समझ तो जाते हैं, साध्यकी सिद्धि कर लेते हैं। लेकिन शंकाकार यह कहता कि इतना तक बोलनेमें कोई तुक तो नहीं पूरी हुई। उसके बाद इसकी अपेक्षा रही कि यह बोला जाय कि इस कारणसे परिणामी है, अनित्य है। अनुमान प्रयोगमें इतना अंश निगमन कहलाता है तो उसे सीधे शब्दोंमें यों कह लीजिये कि अनुमानके सब अवयवोंका प्रयोग किया और एक निगमनका प्रयोग नहीं किया तो उन चार अवयवोंका प्रयोग करना साधन वाक्य न कहलायेगा ! क्योंकि उसे अन्य पदोंकी अपेक्षाकी जरूरत हुई और जब तक दूसरेकी आकांक्षा रही, तब तक वह वाक्य कहलाता नही शंकाकार इस बातके खण्डनमें कह रहा है कि परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय वाक्य कहलाता है। लेकिन कहीं कही लोग साधन वाक्य बोला करते हैं और उसमें बहुतसे अंगोंका प्रयोग कर लेते हैं और इनमेंसे लोग समझ लेते हैं, लेकिन वह पूरा प्रयोग तो नहीं। उसमें शेष अंगोंकी अपेक्षा रहती है तब वे वाक्य न कहलायेंगे। उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना भी युक्त नही है, क्योंकि समझने वाले लोग अनेक योग्यताके होते हैं। कोई कितना ही बोलनेमें समझ लेते हैं, कोई कितना अधिक बोलनेमें समझ पाते हैं। तो जो जितना बोलनेमें समझ लेते हैं उनके लिए वह उतना ही वाक्य है। यदि कोई उतना ही सुनकर समझले कि जो सत् होता है वह सब परिणमनशील होता है तो उसके लिये इतना ही वाक्य हो गया। कोई इससे अधिक बोलनेमें समझ पायगा। जैसे जो सत् होता है वह सब परिणमनशील है। जैसे कि घड़ा। तो उसके लिये उतना ही साधन वाक्य बन गया। कोई इससे और अधिक बोलनेमें समझ पाता है। तो उसके लिये उतना साधन वाक्य बना। वाक्यका अर्थ कितना है। वह तो एक क्रिया बोलते ही समाप्त हो जाता है। पर साधन वाक्यका अर्थ यह है कि जिस साध्यकी सिद्धि कर रहे हैं उस साध्यकी सिद्धिमें जितने बोलते हैं उतनेको साधन वाक्य कहते हैं। सो समझने वाले पुरुष अनेक प्रकारके होते हैं। किसीको थोड़ा बोलनेसे ही समझ बनती है और अन्य पद वाक्योंकी आकांक्षा नही रहती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाक्यलक्षणमें अभिप्रेत निराकांक्षताकी ज्ञातृधर्मता और, भी इस सम्बन्धमें यह समझिये कि निराकांक्षता होना अर्थात् अन्य पद वाक्योंकी अपेक्षा न रखना यह तो ज्ञाताका धर्म है। शब्द तो अचेतन हैं। शब्दोंका धर्म नही है अथवा वाक्योंका धर्म नही है कि वह अन्य पद और वाक्यकी अपेक्षा न रखे। वाक्यान्तरोंकी अपेक्षा रखे यह भी धर्म नही है शब्द और वाक्योंका और अपेक्षा न रखे यह भी धर्म नही है शब्द और वाक्योंका। किन्तु यह तो प्रतिपत्ताका धर्म है। चेतनका धर्म है। तो चेतनके इस धर्मका हम वाक्योंमें आरोप करते हैं। तब हमें वाक्य कितनेमें पूरा हुआ यह समझनेके लिये शब्दोंपर जोर नही देना है जितना कि वक्ता। श्रोता शब्दोंके आशयपर जोर देते हैं। सो यदि कोई पुरुष इतने ही शब्दसे अर्थको जान जाता है तो अन्यकी क्या इच्छा करेगा? फिर वह अपेक्षा न रखेगा। किसीने इतनेसे ही समझ लिया कि जो सत् है वह सब अपरिणामी है उसके लिये इतना ही साधन वाक्य है? कोई दृष्टान्तको और साथ लेकर समझता है तो उसके लिए उतना साधन वाक्य है। कोई उपनयको भी साथमें लेकर समझता है तो उसके लिए उतना साधन वाक्य है। अभी जो शंका करने वालेके लिए दृष्टान्त दिया है, साधन वाक्यका प्रयोग किया है कि जो सत् है वह सब अपरिणामी है जैसे घट और शब्द सत् है इसमें उपनय तक बोला गया है तो कोई पुरुष उपनय तकके ही बात सुनकर भाव समझ जाता है तो किसीको उपनय पर्यन्त साधन वाक्यसे अर्थका ज्ञान हो जाता। इतनेपर भी यदि यह आप शंका रखते हो कि अभी निगमन वचनकी भी तो अपेक्षा रखी जा रही है तो ऐसी शंका करनेपर हम इससे आगे यह भी कह सकेंगे कि कभी निगमन पर्यन्त पांच अवयव वाले वाक्य बोलनेसे भी अर्थकी प्रतिपत्ति करता है उसमें भी किसी दूसरेकी अपेक्षा करनेका प्रसंग आ जायगा तब फिर किन्ही भी वचनोंमें निरपेक्षताकी सिद्धि नही हो सकती। कितने भी वाक्य बोल लें, साधन वाक्य कह लें, कोई इतनेपर भी न समझे तो उसके लिये कह सकते हैं कि अभी उसे समझनेकी और कुछकी अपेक्षा पड़ रही है। तब तो कहीं भी निरपेक्षता और निराकांक्षताकी सिद्धि नही हो सकती। और जब कहीं भी कितना ही बोलनेमें निराकांक्षताकी सिद्धि न हुई तब वाक्यका स्वरूप न बना। जब वाक्य भी पद मात्र रहे तो वक्ताके अर्थकी प्रतिपत्ति नही हो सकती। तब फिर सारा व्यवहार उपदेश, शास्त्र, ये सब व्यर्थ कहलाये। क्योंकि उनसे कुछ ज्ञानकी सिद्धि ही नही हो पा रही है।

पद और वाक्यके लक्षणकी समीचीनताका प्रतिपादन पदका और वाक्यका जो इस प्रकरणमें लक्षण कहा है वह बिल्कुल सही समझना चाहिये। जिस पुरुषका जितने परस्परापेक्ष पदोंमें भाव आ जाय और अन्य पदोंकी आकांक्षा न रहे इतने ही पदोंमें वाक्यपनेकी सिद्धि होती है। यह वाक्यका लक्षण दार्शनिक विधिमें और व्यवहार विधिमें उतरने वाला कितना युक्त लक्षण है। पद कितनेका नाम है, उतने वर्णोंके समुदायका नाम पद है कि उस पदके द्वारा जो अर्थ कहा जाता है उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थके जाननेके लिये अन्य वर्णोंकी अपेक्षा न करनी पड़े । एक पदमें जितने वर्ण बोले जाने बिना पदार्थ नहीं जाना जा सकता, लेकिन उसके अतिरिक्त अन्य वर्ण सुनने बोलने जाननेकी जरूरत नहीं रहती । जैसे किसीने कहा तखत तो इतना शब्द सुनते ही तखत पदार्थका बोध हो गया । अब इस पदार्थको जाननेके लिए अन्य वर्णोंकी अपेक्षा तो न रही । और, तखत शब्दमें जितने वर्ण हैं उन सब वर्णोंके बोलने सुननेकी अपेक्षा आवश्यक है । उनमेंसे एक भी वर्ण अलग कर दिया जाय तो तखत पदार्थ न जाना जा सकेगा । जैसे कोई कहे तख, कोई कहे तत, कोई कहे खत । तो इससे पदार्थ तो नहीं जाना गया । तो एक पदमें जितने वर्ण बोलना अपेक्षित है उतने तो बोले ही जायेंगे लेकिन उसमें अन्य पदोंके वर्णका सम्बन्ध न किया जायगा । तो परस्पराअपेक्षा वर्णोंके निरपेक्ष समुदायको पद कहते हैं और इसी प्रकार परस्परापेक्ष पदोंके निरपेक्ष समुदायको वाक्य कहते हैं । वाक्यके स्वरूपमें जो अभी कहा गया है उस वाक्यकी सिद्धिके ढंगसे ही यह भी समझ लेना चाहिए कि किसी प्रकरण आदिकमें जाने गए अन्य पदोंकी अपेक्षा रखने वाले सुननेमें आए हुए निराकांक्ष वर्ण समुदायको वाक्य कहते हैं यह भी प्रतिपादित हुआ जानना चाहिए । जाननेमें प्रकरणगम्य पदान्तरसे अन्य वाक्यके पदकी अपेक्षा न रखनी पड़े, ऐसे पद बोले जायें तो उनमें भी वाक्यपना सिद्ध होता है जैसे प्रकरणमें जाना गया जो कुछ भी जिसका कि सम्बन्ध कुछ अन्य शब्दोंके साथ है तो उसे मिलाकर वाक्यपना बन जाता है ।

वाक्यके अन्य प्रकार कहे गये लक्षणोंपर विचारभूमिका—अब जो वाक्यका लोग दूसरी प्रकारसे लक्षण कहते हैं उनमें यह बतावेंगे कि वे लक्षण या तो घटित नहीं होते और घटित हो जायेंगे तो जो अभी वाक्यका लक्षण कहा गया है उसीमें गर्भित हो जाता है । लोग लक्षण इन नाना प्रकारोंमें करते हैं - कोई तो कहते हैं कि आख्यात शब्दका नाम वाक्य है । कोई कहता है कि संघातका नाम वाक्य है । कोई संघातमें रहने वाली जाती को वाक्य कहते है । कोई अनवयव शब्दको वाक्य कहते हैं । कोई क्रमको वाक्य कहते हैं कोई बुद्धिको वाक्य कहते हैं । कोई पुरुष अनुसंहृतिको वाक्य कहते हैं और कोई ऐसा कहते है कि पद ही वाक्य अर्थको समझाता हुआ वाक्य कहलाता है । इस प्रकार अनेक प्रकारसे लोग वाक्यका लक्षण करते है । वे सब लक्षण या तो घटित नहीं होते या पूर्वोक्त लक्षणमें ही गर्भित हो जाते हैं । अब इन लक्षणोंका क्रमसे वर्णन और निराकरण सुनो ।

वाक्यके आख्यात लक्षणपर विचार—आख्यात शब्दको वाक्य माननेवाला पुरुष कहता है कि जो प्रसिद्ध शब्द हैं—भवति, गच्छति आदिक वे ही शब्द वाक्य कहलाते हैं अथवा यों समझ लीजिये कि जो प्रसिद्ध धातुपद हैं उनसे ही अर्थ समझने की प्राप्ति हो जाती इस कारण आख्यात ही वाक्य है, ऐसा कहने वालोंसे पूछा जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा है कि जिसको सुनकर लोग अर्थ समझते हैं वह तुम्हारा आख्यात शब्द पदान्तर की अपेक्षा न रखकर वाक्य होता है या पदान्तरकी अपेक्षा रखकर वाक्य होता है ? कोई प्रसिद्ध शब्द बोला गया और उसको तुम कहते हो तो क्या वह अन्य पदोंकी अपेक्षा रखकर वाक्य बना ? यदि कहो कि अन्य पदोंकी अपेक्षा न रखकर वाक्य बन गया तो वह वाक्य ही न कहलाया, क्योंकि जो अन्य पदोंकी अपेक्षा नहीं रखता वह तो पदमात्र है वाक्य नहीं है। जैसे मैं मन्दिरको जाता हूँ इसमें मन्दिरको, यह शब्द बोला तो इसमें जो पदका अर्थ जाना गया उस जाननेमें अब किसी अन्य वर्णकी अपेक्षा तो नहीं रही। तो जिसमें अन्य पदोंकी अपेक्षा नहीं रही उसे तो पद बोला करते हैं अन्यथा अर्थात् आख्यात शब्दको ही वाक्य मान लेवें, पदान्तरकी अपेक्षा न रखें तो आख्यात पदका भी अभाव हो जायगा, क्योंकि उस पदसे भी हमने कुछ भाव ग्राह्य न नहीं कर पाया। इससे पदान्तर निरपेक्ष होकर आख्यात शब्द वाक्य नहीं कहला सकते यदि कहो कि पदान्तरकी अपेक्षा रखकर आख्यात शब्दको वाक्य कहते हैं तो यह बतलावो कि पदान्तरकी अपेक्षा तो रखी और रखते जायें, पर कभी यह भी स्थिति होती है कि नहीं कि अन्य पदोंकी फिर अपेक्षाकी जरूरत नहीं रही। अर्थात् कहीं यह निरपेक्ष हो पाता है या नहीं ? आख्यात शब्द भी पदान्तरकी अपेक्षा रखे। दो, तीन, चार पदोंकी अपेक्षा रखले, पर कहीं इसका विराम भी होगा या नहीं ? ५ ७ पदोंकी अपेक्षा करनेके बाद फिर उसे अन्य पदोंकी अपेक्षाकी जरूरत न रहे, यह स्थिति भी आती है या नहीं ? यह प्रश्न किया गया। यदि कहो कि वह आख्यात शब्द पदान्तर की अपेक्षा रखकर भी कहीं पदान्तरकी अपेक्षा नहीं रखनी पड़ती है। वहां निरपेक्ष हो जाता है, यह पक्ष तो सिद्धसाधन है। हम भी मानते हैं और इसी आधारपर लक्षण बोला गया है कि परस्परापेक्ष पदोंके निरपेक्ष समुदायका नाम वाक्य है, याने कुछ पदोंकी अपेक्षा रहती है और जहां तक पदोंके बोलनेसे भाव आशय पूर्ण आजाता है फिर अन्य पदोंकी अपेक्षा नहीं रहती। यही इस समय यह शंकाकार भी मान रहा है और यही वाक्यके लक्षणमें कहा गया है। यदि कहो कि आख्यात शब्द पदान्तरकी अपेक्षा रखकर वाक्य बनता है और वह कभी निरपेक्ष हो नहीं पाता तो जब पदान्तर की तो अपेक्षा रखी और कहीं भी निरपेक्ष न बन सका तो प्रकृत अर्थकी फिर समाप्ति ही न हो सकी। तब वाक्यरचना ही नहीं बन सकता। जैसे अर्द्ध वाक्य कोई वाक्य आधा बोला गया तो उससे कोई अर्थ तो नहीं जाना जाता क्योंकि वह अभी निरपेक्ष नहीं बन पाया। तो इसी तरह आप कह रहे हैं कि आख्यात शब्द पदान्तर की अपेक्षा रखते हैं और रखते ही चले जाते हैं, कहीं भी निरपेक्ष नहीं हो पाते, तो सदा अधूरा ही वाक्य रहा। वाक्य पूरा बन ही नहीं सकता। तो जैसे आधा ही वाक्य बोलनेपर उसका कुछ भाव समझमें नहीं आता इसी प्रकार अब कुछ भी बोलते रहनेपर भी जब कहीं निरपेक्षता आती ही नहीं तो उसका अर्थ भी कुछ समझ में नहीं आ सकता। इससे आख्यात शब्दका नाम वाक्य है यह लक्षण युक्त सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नही होता ।

आख्यात लक्षणके विश्लेषणोंका निर्देश—आख्यातके विश्लेषणमें जब विकल्पों द्वारा पूछा गया एक विकल्प तो सही उतरा कि आख्यात शब्द विषयान्तर अपेक्षा रखता हुआ कहीं निरपेक्ष हो जाता है तो वह वाक्य कहलाता है । तो यह विकल्प वाक्यके लक्षणके अनुरूप ही है । यही बात वाक्यके लक्षणमें कही, यही बात इस विकल्प में मानी जा रही है । इसके अतिरिक्त इस प्रकरणमें जितने अन्य विकल्प बोले गए है वे सारे विकल्प लक्षणमें घटित नही होते इस कारण आख्यात शब्दका नाम वाक्य है, यह सही नही बनता किन्तु परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय वाक्य है यह ठीक बनता है । क्योंकि जब तक निरपेक्षता नही आती तब तक वह वाक्य नही कहलाता । जैसे किसीने कहा देवदत्त गायको । अब इतना सुनकर कुछ भाव नही समझा गया । यह अर्द्ध वाक्य है । इसमें अभी कुछ पदोंकी आवश्यकता है । जैसे उसके बाद ही कह दिया जाय—लावो तो वह समझ गया कि देवदत्त गाय को लावो । अब इतना बोलनेके बाद इस भावको समझ लेनेमें किसी भी अन्य पदकी अपेक्षा नही करनी पड़ रही । इसमें वाक्यका लक्ष्य लक्षण भली भांति घटित हो गया कि परस्परापेक्षा पदोंके निरपेक्ष समुदायका नाम वाक्य है । वाक्य लक्षणमें दो बातें हैं । जितने पदोंके बोले बिना भाव नही आते, उतनेकी तो अपेक्षा रहती है और जितने पदोंके बोलनेसे भाव आ जाता है फिर उसके अन्य पदकी अपेक्षा नही रहती । यह बात आख्यात कह कर मानो या अन्य प्रकार, मानना यही पड़ेगा ।

वाक्यके संघात लक्षणपर विचार—किन्हींने कहा है कि संघातको वाक्य कहते हैं संघात मायने समूह । तो इस विषयमें भी पूछा जा रहा है, कि वह वर्णोंका संघात अथवा पदोंका संघात क्या देशकृत है अथवा कालकृत है ? याने एक स्थानमें वर्ण और पदका समूह हो गया या कालकृत जो वर्ण हैं उन वर्णोंका समुदाय बन गया । इसमें देशकृत समुदाय तो कह नही सकते क्योंकि क्रमसे उत्पन्न होने वाले और ध्वस्त होने वाले वर्णोंका अथवा पदोंका एक ही क्षेत्रमें अवस्थित होने रूपसे समुदाय नही बन सकता । एक क्षेत्रमें सब वर्ण एक साथ रह जायें यह कैसे हो सकता क्योंकि वर्ण तो क्रमसे उत्पन्न हुआ करते हैं । यदि कहो कि वर्णोंका समुदाय कालकृत माना है तो पदरूपताको प्राप्त हुए वर्णोंसे यह संघात भिन्न है अथवा नही । यहां वह पूछा जा रहा है कि यदि कालकृत वर्णोंका संघात है तो वह वर्ण जो पदरूप परिणाम हुआ है उन वर्णोंसे यह संघात कालकृत भिन्न है अथवा अभिन्न ? भिन्न और अनंश तो कह नही सकते, क्योंकि अभिन्न समुदाय कहीं पड़ा हो और वह निरंश पड़ा हो, वर्ण अलग हो, ऐसा प्रतीत ही नही हो सकता, और भिन्न हैं यदि तो फिर उन का संघात क्या हुआ ? जैसे अन्य वर्ण हैं । अन्य पदोंके वर्ण हैं तो उनका संघात तो नही हुआ करता । तो यों कालकृत भिन्न संघात मानते हो तो संघातपना उनमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या रहा ? यदि कहो कि संघात उन वर्णोंसे अभिन्न है तो सर्वथा अभिन्न है या कथंचित् अभिन्न है याने जो वर्ण बोले गए उनका जो समुदाय है वह समुदाय वर्णोंसे क्या सर्वथा अभिन्न है या कथंचित् ? यदि कहो कि सर्वथा अभिन्न है तो फिर यह संघात क्या हो सकता है ? संघात के स्वरूपकी तरह। जैसे कि संघात सर्वथा संघाती वर्णोंसे अभिन्न होनेपर भी यदि अलग बात रही तो फिर अभिन्नता क्या यदि संघतियोंसे संघात अभिन्न होनेपर भी अलग अलग सत्व रहते हैं तो फिर प्रत्येक वर्णमें संघातत्वका प्रसंग आ जायगा। जितने वर्ण हैं वे सभी संघात कहलाये पर एक वर्ण को तो संघात नहीं कह सकते, क्योंकि यों तो एक पदार्थसे भी जुड़े कह बैठो। यदि एक वर्ण नाका संघात हो गया तो एक व्यक्तिसे हम जाति भी कह बैठे। उसमें क्या विरोध आ जायगा ? यदि कहो कि संघात संघात संघातियोंसे कथंचित् अभिन्न हैं तो यह तो जैन सिद्धान्तमें बात कही गई है। एक वर्णके प्रवर्तमान होनेपर संघात नहीं नष्ट होता इस कारणसे तो भिन्न है और वर्णोंसे भिन्नरूपसे संघात नहीं पाया जाता इस कारणसे अभिन्न है ? और इस तरह जो वाक्यका अर्थ किया गया कि परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय वाक्य है और पदका लक्षण किया गया था परापेक्ष वर्णोंका निरपेक्ष समुदाय पद है तो यह बात भी तो कथंचित् भिन्न अभिन्न माननेसे व्यवस्थित होती है, क्योंकि प्रत्येक सापेक्ष और निरपेक्ष रूपसे प्राप्त हुए वर्णों से कालप्रत्यासत्तिरूप संघात कथंचित् वर्णोंसे अभिन्न हैं व कथंचित् भिन्न है। यों पदोंका निरपेक्ष समुदाय वाक्य है इस लक्षणका उल्लंघन न हो सका। वर्णोंका समुदाय वर्णसे भिन्न यों है कि जो समुदाय है उसको ही केवल वर्ण नहीं बोलते। और एक वर्ण है उसको समुदाय नहीं बोलते ऐसा समुदाय कथंचित् भिन्न हुआ और सब वर्णोंसे अलग कोई समुदाय पाया जाता हो सो भी बात नहीं है इस कारण समुदाय वर्णसे अभिन्न हुआ। तो यों जो साक्षात् है, परस्परापेक्ष हैं और अन्यकी अपेक्षा नहीं रखते उनको वाक्य कहा गया है। तो इसमें भी कोई दोष नहीं आता। इस तरह संघातका नाम वाक्य है, यह लक्षण सही नहीं बैठता।

संघातवर्तिनी जातिरूप वाक्य लक्षणपर विचार—कोई पुरुष कहता है कि संघातमें रहने वाली जातिका नाम वाक्य है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि संघातमें रहने वाली जाति, इससे क्या सिद्ध हुआ कि निरपेक्ष परस्परापेक्ष पदोंके समूहमें जो सदृश परिणाम लक्षण वाली जाति है वह कथंचित उन वर्णोंसे अभिन्न है और उस का नाम इसने वाक्य रखा है। समूहमें रहने वाली जाति। तो कितने समूहमें रहने वाली, जितनेसे अर्थ निकलता है। तो यह तो हुआ परस्परापेक्ष और जिससे सम्बन्ध नहीं है, अन्य पदोंकी बात है अन्य वाक्यकी बात है तो उसमें वर्णत्वलक्षणाजाति इस सम्बन्धकी नहीं पायी गई तो इससे यही तो सिद्ध हुआ कि परस्परापेक्ष और निरपेक्ष जो पद हैं वे वाक्य कहलाते हैं। उस जातिको संघातसे यदि कथंचित भिन्न अभिन्न न मानोगे तो संघात वाक्य है इस विकल्पमें जितने दोष बताये गए थे वे समस्त दोष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसमें लागू हो जायेंगे।

अनवयव शब्दरूप व क्रमरूप वाक्यलक्षणोंपर विचार कोई पुरुष कहता है कि एक निरंश शब्दका नाम वाक्य है। शब्दका अर्थ स्फोट यह भी एक कल्पना मात्र है, क्योंकि स्फोट प्रमाणभूत ही नहीं हैं, यह बात पहिले बता ही चुके हैं। स्फोट अर्थका प्रतिपादक है, ज्ञाता है और वह ज्ञान होता है शब्दों द्वारा इस कारणसे व्यवहारसे शब्द अर्थका प्रतिपादक है। स्फोटका कोई स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता। प्रतिपाद्य प्रतिपादककी बात कहना तो दूर है। तो निरवयव स्फोटका नाम वाक्य है, यह भी एक कल्पना मात्र है। कोई पुरुष कहता है कि वर्णोंके क्रमका नाम वाक्य हैं। एक वर्ण उत्पन्न हुआ फिर द्वितीय वर्ण उत्पन्न हुआ फिर तृतीय वर्ण उत्पन्न हुआ यों जो क्रमसे उत्पन्न हुए वर्णोंका समूह हैं इसका नाम वाक्य है। तो इस पक्षमें और संघात पक्षमें अन्तर कुछ न आया। क्रमसे उत्पन्न हुए वर्णोंके समूहका नाम वाक्य है इस अभिप्राय का क्रम का लक्षण वाक्यसे बनाते हो और संघात वाक्य है इस पक्ष वालेने उत्पन्न हुए वर्णोंके समूहका नाम वाक्य है यों कहा। जो दोष संघात पक्षमें था वही दोष क्रम लक्षण वाले वाक्यमें है इस पक्षमें प्राप्त होता है।

बुद्धिरूप व अनुसंहतिरूप वाक्यलक्षणपर विचार—कोई पुरुष कहता है कि बुद्धि वाक्य है तो यहाँ यह बतलावो कि बुद्धिको भाव वाक्य कहते हो या द्रव्य वाक्य कहते हो? यदि बुद्धि वाक्य इसका अर्थ यह है कि बुद्धि भाव वाक्य है तो यह तो सिद्ध है। पूर्व पूर्व वर्णोंके ज्ञानसे जिसने बुद्धि संस्कार प्राप्त किया है ऐसे आत्माके वाक्यके अर्थके ग्रहणमें परिणमें हुये उस आत्माके अन्तिम वर्णके सुननेके बाद जो बुद्धि उत्पन्न होती है जिससे कि वाक्यके अर्थका बोध होता है उस पदात्मक भाव वाक्यको जैनोंने भी स्वीकार किया है। वाक्य प्रतिपत्तिके अभिप्रायका अनुसरण करते हैं और सभी वाक्य उतने माने गए हैं जितने पदोंसे वक्ताके आशयकी पूर्ति हो जाय। तो वाक्य के प्रमाणकी निर्भरता वक्ताके आशयके ऊपर है। इस कारणसे बुद्धिको भाव वाक्य कहना इन लोगोंको भी अभीष्ट है, और यदि बुद्धिको द्रव्य वाक्य बताते हो तो इसको कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा, क्योंकि इसमें प्रतीतिसे विरोध है। वाक्य अचेतन है और बुद्धि चेतन है। बुद्धि चेतन हैं तब बुद्धिको द्रव्य कैसे कहा जा सकता है? कोई पुरुष कहता है कि अनुसंहृतिका नाम वाक्य है याने पदरूपतासे प्राप्त हुये वर्णोंका जो परामर्श है, स्मरण है उससे जो कुछ विचारका संहार होता है, निर्माण होता है वह अनुसंहृति वाक्य है तो यह भी कल्पना युक्त नहीं है, क्योंकि पदोंकी अनुसंहृति रूपका जो कि भाव वाक्य कहना अभीष्ट है। जो परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय है भाव वाक्य है उस ही का नाम अनुसंहृति है। तो उसका अर्थ यही तो निकला कि उन पदोंको सुनकर जो एक बुद्धि बनती है वह वाक्य है। तो यों वाक्य वक्ताके आशयको ही सिद्ध कर रहा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदान्तरापेक्ष किसी पदको व पदार्थ प्रतिपादक पदोंको वाक्य लक्षण माननेपर विचार—कोई पुरुष कहता है कि पदान्तरकी अपेक्षा रखने वाला आदि पद अन्तिमपद अथवा अन्य ये सब वाक्य होते हैं तो यह बात भी वाक्यके लक्षणसे भिन्न नहीं होती। परस्परापेक्ष पदोंके निरपेक्ष समुदायको वाक्य बताया है। जो अन्य वाक्यके पदोंकी अपेक्षा नहीं रखते सो इस वाक्यके अर्थमें भी यह बात आयी कि पदान्तरापेक्ष शेष जो पद हैं उनका नाम वाक्य है। यदि परस्परकी अपेक्षारहित पद को वाक्य कह दिया जायगा तब फिर पदका ही लक्षण न रहेगा, क्योंकि दूसरेकी अपेक्षा रहित पदका नाम वाक्य है, तो जितने भी पद हैं वे सारे वाक्य कहलाने लगेंगे उनमें फिर पदत्व कुछ नहीं रहा, सभी पद वाक्य बन बैठेंगे। कोई पुरुष मानता है कि पद ही पदार्थके प्रतिपादन पूर्वक वाक्यार्थके ज्ञानको बनाते हुए वाक्य नामको प्राप्त होते हैं। उनको भी आखिर वाक्यका लक्षण जो कहा गया था कि परस्परापेक्ष और अन्य निरपेक्षपद समुदायको वाक्य कहते हैं। तो पद ही वाक्योंके अर्थका ज्ञान कराता है इसमें भी वही बात आयी। कितने पद वाक्यके अर्थका ज्ञान कराते हैं कि जितने पद दूसरोंको अपेक्षित रहते हैं और अन्यसे अनाकांक्ष रहते हैं। यही बात वाक्यके लक्षणमें कही गयी है। तो यों वाक्यके जो अनेक लक्षण कहे गए हैं उन अनेक लक्षणों में ये लक्षण घटित नहीं होते. और कुछ घटित होते हैं, सो जो वाक्यका लक्षण कहा है उसका ही पोषण करने वाले हैं जैसे कि कहा गया है कि परस्परापेक्ष और वाक्यान्तर के पदोंसे निरपेक्ष पदोंके समुदायका नाम वाक्य है। इस तरह वाक्यके स्वरूपकी व्यवस्था की।

पदोंके द्वारा पदान्तरार्थान्वित अर्थोंका अभिधानरूप वाक्यार्थ माननेपर अन्यपदोंकी व्यर्थताका प्रसंग—अब वाक्यसे क्या अर्थ ध्वनित होता है इसकी चर्चा चलती है। कुछ लोग कहते हैं कि पदान्तरोंके अर्थसे सम्बद्ध ही अर्थका पदोंके द्वारा अभिधान होता है। तब ही पदोंके अर्थ वाक्यके अर्थका ज्ञान होता है। इसे कहते हैं अन्विताभिधान अर्थात् अन्य पदोंके अर्थसे सम्बद्ध होते हुए अर्थका पदोंके द्वारा कथन होता है। यद्यपि [illegible] कुछ ठीक है लेकिन इसमें प्रधानता किसी भी एक पदकी आयी। और वह पद अन्य [illegible] अर्थसे अन्वित अर्थका-अभिधान करता है। तो यों यदि पदान्तरके अर्थसे सम्बद्ध हुए अर्थका [illegible]ोंके द्वारा कथन किया जाता है और उससे पदार्थोंकी प्रतिपत्ति होती है तब तो एक देवदत्त [illegible] के द्वारा देवदत्तका अर्थ जाना गया जो कि गायको लावो इन पद वाक्य अर्थासे युक्त है। तो जब एक ही पदसे अन्य पदोंके अर्थसे सहित अर्थका कथन हो गया तो शेष पदोंका उच्चारण करना व्यर्थ हो जायगा। एक ही पदसे अपने अर्थको कहा तथा अन्य पदोंके अर्थसे सम्बद्ध अर्थको कहा तब तो प्रयोजन एक पदका ही रहा। एक पदके ही द्वारा वे समस्त अर्थ कह दिये गए हैं अथवा प्रथम पदको ही वाक्य कह दिया जायगा। जब एक पद समस्त अर्थको कह देता है अर्थात् अन्य पदोंके अर्थसे सम्बद्ध अर्थको कह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

र. पहिला पद बोलते ही सारा अर्थ
कह देना है तो एक ही पद वाक्य बन हो जायगा। तब जितने भी पद हैं
ध्वनित हो गया तो एक ही वाक्यरूपत ॐ. पदार्थ हैं उन सबका वाक्य
उन सबका वाक्यपना बन जायगा अथवा ३:२ पदोंका उच्चारण करना
अर्थपना बन जायगा। यहाँ शंकाकार कहता ः करनेके लिये अन्य पद कहने
इसलिये व्यर्थ नहीं है कि अविवक्षित पदार्थका ६ .किसी एक पदम वर्णन
पड़ते हैं। तो उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह उम ः ६:। ३,५। तो इसका
किया था। अब अन्य पदान्तरोंके अर्थके व्यवच्छेद दुहरा करके वाक्य
अर्थ यह हुआ कि उसके अर्थको दुबारा दुहराया गया ५, क्या कहा गया
अर्थकी प्रतिपत्ति करायी गई। प्रथम पदका जो अर्थ कह . . ३,या था अब
था कि द्वितीय आदिक पदार्थोंके जो अर्थ हैं उनमे अन्वि : बताना यह
सारी बात एक पद बन गई। अब द्वितीय आदिक पदों
ता उनकी आवृत्ति हुई।

स्वकीय पदके अर्थका प्रधानभावसे अवगम माननेपर :दराभि-
धानमें दोषनिराकरणका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि ६ दिह
पक्षोंके द्वारा पूर्व और उत्तर पदोंके द्वारा अभिधेय अर्थोंसे सम्बन्धित अ ह्वा।
प्रधान भावसे अभिधान होता है अर्थात् वे द्वितीय आदिक पद कहते तो हैं
अथको, किन्तु पूर्व आदिक पाहले पदोंके अभिधेय अर्थसे सहित कहते हैं लेकिन
पदका प्रधान भावसे अभिधान करते हैं। उनका अभिधान प्रथम पदसे नहीं होता
कारण यह दोष नहीं है। जो दोष दिया था कि वही पूर्व पदने जाना और फिर उत्तर पदने भी वही जाना तो एक पुनरावृत्ति हो गई। पुनरावृत्ति यों नहीं होती कि प्रत्येक पद अपने अभिधेयको प्रधानरूपसे जानता है और जानता है अन्य पदोंके अभिधेय अर्थसे युक्त, किन्तु प्रधान और अन्य विधिसे जाननेके कारण यहां दोष नहीं है। उत्तरमें कहते हैं कि तब तो जितने पद हैं उतने ही उसके अर्थ हो गए और वे पदान्तरके अभिधेय अर्थसे सम्बद्ध हो गए। तो वे सबके सब प्रधानरूपसे जाने जाना चाहिए। इसी प्रकार जितने पद हैं उतने ही वाक्य हो गए और उतने ही वाक्यके अर्थके ज्ञान हो गए। तो सभी पद अपने-अपने अर्थको प्रधान भावसे जानते हैं और जानते हैं पूर्वोत्तर अन्य पदोंके अभिधेय अर्थसे सम्बद्ध होकर। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक अभिधेयसे पूरा वाक्य समझ लिया।

अन्तिमपदोच्चारणसे अन्विताभिधानकी वाक्यार्थता माननेमें भी दोषोंका अनिराकरण—अन्तिम पदके उच्चारणसे शेष पूर्व पदोंके द्वारा अभिधेय अर्थसे सम्बद्ध अन्तिम पदोंके अर्थका ज्ञान होनेसे वाक्यके अर्थका ज्ञान होता है। यह बात युक्त नहीं है, क्योंकि अन्तिम पदसे ही समस्त पदोंके अभिधेय अर्थसे सहित अर्थका ज्ञान होनेसे वाक्यार्थका ज्ञान होता है और प्रथम पदके उच्चारणसे अन्य पदोंके

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभिधेयसे युक्त अपने अर्थका ज्ञान होनेसे व अपने अर्थका ज्ञान नहीं हुआ या द्वितीय आदिक पदोंके उच्चारणसे समस्त अन्य पदोंके अभिधेयोंसे सम्बद्ध अर्थका ज्ञान होनेसे वाक्यार्थका ज्ञान नहीं हुआ, इसमें हमको कोई कारण नहीं दिख रहा है अर्थात् जब प्रत्येक पद अन्य पदोंके अभिधेयसे सहित अपने अर्थका ज्ञान करता है तो प्रत्येक पदोंसे ही पूरा वाक्य समझ लिया जायगा। उसमें यह अन्तर नहीं आ सकता कि अमुक अन्तिम पदोंके उच्चारणमें ही वाक्यार्थका ज्ञान होता।

गम्यमान अर्थोंसे ही उच्चार्यमाणकी अन्वितता माननेपर भी दोषोंका अनिराकरण शंकाकार कहता है कि गम्यमान पदान्तरोंके द्वारा उच्चार्यमाण पदोंके द्वारा गम्यमान पदोंके अर्थसे सम्बद्धता होती है। इस तरह यह दोष नहीं आता। शंकाकारका आशय यह है कि यहां दो प्रकारके पद हुए और उनका अर्थ हुए – एक तो अभिधीयमान और एक गम्यमान। जिस पदका उच्चारण किया है उसका तो अर्थ है अभिधीयमान और उच्चरित पदसे भिन्न अन्य पदोंका जो अर्थ समझा है वह है गम्यमान पदार्थसे उच्चार्यमाण पदके अर्थका सम्बन्ध है, पर उच्चार्यमान पदके अर्थसे गम्यमान पदके अर्थका सम्बन्ध नहीं है और इसी कारण दोष नहीं लगता। इसपर उत्तरमें पूछते हैं कि पदका अर्थ क्या अभिधीयमान ही हुआ करता है गम्यमान नहीं होता। एक वाक्यमें जैसे ५-६ पद हैं तो उनमें पदका अर्थ गम्यमान भी है अभिधीयमान भी है। किन्हीं पदोंका अर्थ गम्यमान है तो किन्हीं पदोंका अर्थ अभिधीयमान है। उनमेंसे क्या केवल अभिधीयमान ही पदका अर्थ होता है तब फिर अन्यका अभिधान कैसे बने? जब केवल पदका अर्थ गम्यमान नहीं है तो गम्यमान पदसे सम्बद्ध होकर ही तो अन्वितका अभिधान कहलाता है? गम्यमान अर्थ रहा नहीं तो अभिधान भी नहीं बन सकता क्योंकि जो विवक्षित पद है उसके गम्यमान पदान्तरके अभिधेय अर्थ विषय न रहे शंकाकारके इस आशयसे, तब फिर अन्वितका अभिधान सिद्धान्त ही नहीं बन सकता।

पदोंके व्यापारमें अर्थका अभिधान अब शंकाकार कहता है कि पदोंके व्यापार दो होते हैं एक अपने अर्थका अभिधान करना, दूसरे पदान्तरोंके अर्थका गमकत्व करनेमें व्यापार करना। अर्थात् पदके दो ही काम हैं उसके द्वारा अर्थका अभिधान होता है और अर्थ गम्यमान भी होता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो पदार्थोंकी उत्पत्ति दुबारा कैसे न होगी? जब पदका अर्थ अभिधान भी है गम्यमान भी है तो पहिले गम्यमान रूपसे जाना, तो उसके बाद अभिधानरूपसे जाना तो दुबारा जानना हो गया अथवा इसी तरह पहले जाना अभिधानरूपसे। फिर जान लिया गम्यमानरूपसे तो उसमें भी दुबारा प्रतीति हो गयी। तो पुनरावृत्तिका दोष बराबर हो रहा है। अब दोष निराकरणार्थ शंकाकार कहता है कि पदोंका प्रयोग उन पदोंके अर्थकी उत्पत्तिके लिए है या वाक्योंके अर्थकी उत्पत्तिके लिए है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाकार विकल्प उठा कर अपने दोषोंका परिहार करना चाहता है। पूछ रहे हैं कि पदोंका प्रयोग बुद्धिमान लोग किया करते हैं तो पदोंके अर्थके ज्ञानके लिये किया करते हैं या वाक्योंके अर्थके ज्ञानके लिये किया करते हैं ? यह तो कह नही सकते कि बोलने वाला जो कुछ बोला करता है पदोंका प्रयोग किया करता है वह पदोंके अर्थ के ज्ञानके लिये ही करता हैं। क्योंकि पदोंके अर्थका ज्ञान करनेसे कोई प्रवृत्ति नही होती। जैसे एक वाक्य है कि देवदत्त गायको लाओ। तो इसमें केवल एक पद आप बोलें। 'देवदत्त" बोला। देवदत्त बोलनेसे देवदत्त पुरुष का ज्ञान तो हुआ मगर प्रवृत्ति कुछ नही हुई कि क्या करें ? केवल "गायको" इतना ही कहा तो पदके अर्थका ज्ञान तो हो गया। गायको कहा गया है। किन्तु क्या करना है यह प्रवृत्ति ज्ञात न हो सकी। लाओ, इतना भी कह दिया। लाओका अर्थ तो ज्ञान हो गया कि लाना इसे कहते हैं पर किसे लाना है कौन लावे इसकी कुछ प्रवृत्ति न हो सकी। इस कारण पदका प्रयोग केवल पदके अर्थके ज्ञानके लिये होता है यह बात तो अयुक्त है। यदि कहो कि पदका प्रयोग वाक्योंके अर्थके ज्ञानके लिये होता है तो सुनो—पद प्रयोगके बाद पदार्थमें उत्पत्ति साक्षात् होती है, यह है वहां पदके बोलनेका व्यापार। बोलेंगे तो पदके अर्थका ज्ञान होता है। शंकाकार ही कह रहा है कि पदका प्रयोग यदि वाक्यके अर्थके ज्ञानके लिए है तो पद प्रयोगके बाद तो केवल पदके अर्थका ज्ञान हुआ, अन्य पदोंके अर्थमे गमकपना नही हो सकता। अर्थात् अन्य पदोंके अर्थकी प्रतीति करले यह बात नही बन सकती। अब इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना भी अयुक्त है। बात तो सही है, पदका प्रयोग करनेसे केवल पदके अर्थका ही बोध हुआ। जैसे वृक्ष: पदका प्रयोग करनेपर सारवादिमान पदार्थका ही बोध हुआ और सारवादिमान पदार्थके ज्ञानसे फिर दूसरा पद जो बोला गया—तिष्ठति—(खड़ा है)। तो इसका वाक्यार्थ है वृक्ष खड़ा है, यह सामर्थ्यसे जान लिया कि इस पदमें यह कहा जा रहा है ? पद बोलते समय तो केवल उस ही पदके अर्थका बोध होता है, अन्य पदान्तरके अर्थका बोध नही होता। हर पहिले जाने गए पदके अर्थसे संस्कार रखकर जब दूसरे पदका अर्थ जाना गयातो उसका भाव पूरा आ जाता है। वहांपर अन्य पदोंके जाननेमें विवक्षित पदका साक्षात् व्यापार नही है। साक्षात् व्यापार तो उस पदके द्वारा उस पदके अर्थके ही जाननेमें है यदि परम्परासे वृक्ष पदका अन्य अर्थमें भी व्यापार मान लो—वृक्ष: तिष्ठति—इसमें दो पद हैं वृक्ष बोलनेसे यदि तिष्ठति, इस पदके अर्थमें भी परम्परया व्यापार मान लिया तब तो साधनके जुटनेसे साध्यकी प्रतिपत्तिमें व्यापार हो गया। तो, यों अनुमान ज्ञान शब्दजन्य ज्ञान बन गया। वह कोई हेतुजन्य ज्ञान नही रहा इसी भांति तो पदका परम्परा दूसरे अर्थके पदका भी व्यापार मान रहे हैं। जब साधन वाचक शब्दसे साध्यकी प्रतिपत्ति में परम्परया व्यापार हो गया फिर शब्दजन्य ज्ञान वह कहलाया क्योंकि साधनके वचनमात्रसे साध्यकी प्रतिपत्त हो गई। इसमें अनुमान नामक ज्ञान कुछ नही रहा।

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह भेद नहीं डाल सकते कि साधनवाचक शब्द [illegible] ति होती है और वह है शाब्दिकी प्रतिपत्ति [illegible] है, है वह शाब्दिकी प्रतिपत्ति नहीं कहलाती। [illegible] क्योंकि ऐसा करनेमें अतिप्रसङ्गदोष हो जायगा। फिर [illegible] प्रत्यक्ष ज्ञान है वह भी शब्दजन्य ज्ञान कहलायेगा। और [illegible] पद के अर्थका ज्ञान हो रहा है वह शब्दजन्य ज्ञान नहीं कहलाता है। [illegible] साधनसे साध्यका ज्ञान साध्य प्रतिपत्ति नहीं है [illegible] आदिक शब्दकी जो प्रतिपत्ति होती है वह भी शब्द [illegible] प्रतिपत्ति नहीं होती। इस पदमें तो अपने अर्थके ज्ञानमें ही परिसमाप्ति है [illegible] शब्दकी तरह। [illegible] शब्दका अर्थ साधन शब्दमें ही समाप्त हो जाता है, अन्य पदोंका [illegible] प्रकार प्रत्येक पदका उनका निज निजका अर्थ है। कोई पद किसी दूसरे पदके [illegible] ज्ञान नहीं कर सकता। यह प्रकरण चल रहा है अन्विताभिधानके निराकरणका। अन्विताभिधानका अर्थ यह है कि किसी वाक्यमें जैसे ५ पद हैं तो एक [illegible] अर्थ तो जाना मगर शेष चार पदोंके अर्थसे सम्बद्ध अर्थका ज्ञान किया। [illegible] पदमें अन्य पदोंके अर्थसे अन्वित अपने अर्थका ज्ञान किया।

विशेष्यपदके द्वारा ज्ञान किये जाने वाले अर्थके सम्बन्धमें शङ्काकारसे पूछना—और भी पूछते हैं कि विशेष्य पद विशेषण सामान्यसे अन्वित विशेष्यका अभिधान करता है या विशेषणसामान्य और विशेषण विशेषसे अन्वित अर्थका अभिधान करता है। विशेष्य पद किसका वर्णन करता है? यदि कहो कि विशेष्य पद विशेषण सामान्यसे अन्वित विशेष्यको कहता है तब तो विशिष्ट वाक्यके ज्ञानका विरोध हो गया क्योंकि विशेष्य पद तो विशेषण सामान्यसे सम्बद्ध विशेष्यको कहा करता है, तो प्रतिनियत विशेषणसे विशिष्ट उस विशेष्यका ज्ञान नहीं हो पाया। यदि कहो कि विशेष्यपद विशेषण विशेषसे अन्वितको कहता है तो फिर तो यही तो निश्चय असम्भव है। क्योंकि शब्द द्वारा नहीं कहे गये प्रतिनियत विशेषणका तो कहे हुए स्व विशेष्यमें अन्वय होनेका सन्देह रहेगा, क्योंकि विशेष्य अन्य विशेषणोंमें भी शब्दके द्वारा अनिर्दिष्टताकी सम्भवता है। जब विशेष्य पदमें विशेषण विशेष्यने अन्वितको जाना तो विशेषान्तरों को क्यों न जानले? वह भी तो विशेषण विशेष्य है। यदि कहो कि वक्ताके अभिप्रायसे वहां पर प्रतिनियत विशेषणका ही अन्वय होता है तो यह बात युक्त नहीं है क्योंकि जिस श्रोताको वक्ताके इस अभिप्रायका प्रत्यक्ष तो है नहीं, तब वक्ताका यही अभिप्राय है यह उसमें निर्णय नहीं बन सकता। और कहो कि वक्ताका अपने प्रति जो अभिप्राय है उसका तो निर्णय बना हुआ है। कहते हैं कि वक्ताका अपने प्रति अभिप्रायका निर्णय बना है तो रहा उससे फिर शब्दके उच्चारणमें निरर्थकता होती है। वक्ताके जो अभिप्राय है वे वक्तामें हैं. उसको वक्ता जब कह रहा है फिर शब्दका उच्चारण क्यों किया जा रहा है? शब्दका उच्चारण श्रोताजनोंके ज्ञानके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए किया जाता है। ये श्रोताजन वक्ताका अभिप्राय जानें इसलिए वक्ता शब्दको कहा करते हैं। अब मान रहे हो तुम यह कि वक्ताका अभिप्राय अपने आत्माके प्रति तो है तो इसमें वही दोष आयेंगे। अब तीसरा पक्ष मानते हो अर्थात् विशेष्यपद विशेषण सामान्यसे सम्बद्ध अर्थको भी कहते हैं और विशेषण विशेष्यसे अन्वित अर्थको भी कहते हैं यह बात सही नहीं है, इसमें दोनों पक्षोंमें दिये गए दोष आ जाते हैं। अच्छा अब यह बतलावो कि साधनका प्रतिपादन जो होता है, प्रसिद्ध शब्दसे कहा जाता है वह क्या क्रिया सामान्यसे सम्बद्ध अर्थका प्रतिपादन होता है या क्रिया विशेषसे संबद्ध अर्थका प्रतिपादन होता है। क्रिया निरन्वय क्रिया-विशेष दोनोंसे सम्बन्धी का प्रतिपादन होता है इसी तरह यह भी पूछा जा सकता है कि साधन सामान्यसे क्या जाना गया क्या साधन शब्दसे अन्य क्रियाकी उपादेयता है या क्रिया विशेषसे अन्वित का प्रतिपादन या क्रिया सामान्य क्रिया विशेष दोनोंसे अन्वितका प्रतिपादन है ये सब भी निराकृत हो जाते हैं।

अन्विताभिधानके निराकरण विवरणके पश्चात् निष्कर्ष—देखिये! शब्द अर्थके प्रतिपादक होते हैं और समझने वाला होता है आत्मा। ऐसी तीन बातोंका सही बोध न होनेसे कितनी कितनी कल्पनायें करनी पड़ीं। एक यह कल्पना की गई कि शब्दसे अर्थका ज्ञान नहीं होता किन्तु अन्यापोहका ज्ञान हुआ, एक यह कल्पना करनी पड़ी कि पदार्थोंका वाचक तो है कोई मगर शब्द नहीं किन्तु स्फोट वाचक है। अब कोई यह कह रहा है कि शब्द अर्थका तो वाचक है मगर प्रत्येक पद अन्य पदोंके विशेष अर्थसे अन्वित अपने अर्थका प्रतिपादक है इसे कहते हैं अन्विताभिधान यहां मान लिया गया कि प्रत्येक पद अपने अर्थका भी अवबोध करता है और अन्य पदों का भी अवबोध करता है, इसे कहते हैं अन्विताभिधान। अन्विताभिधानके प्रश्नोत्तर होते होते अन्वितपनेके अन्य प्रसङ्गोंमें भी विशेष्य विशेषताका [illegible]दन होता है वहां [illegible] विशेषणपद इससे अन्वितका प्रतिपादन करता है यह [illegible] जहां साधन साध्यका ज्ञान करता है तो साधन सामान्यसे सहितका [illegible]य साधन विशेषसे सहितका ज्ञान करता है या दोनोंसे सहितका ज्ञान [illegible] प्रतिपादन करके इनके अर्थका यहां निराकरण किया गया है। तो [illegible] कि वचन अर्थके प्रतिपादक होते हैं, इनके समझने वाले होते हैं [illegible] पुरुष यदि गुणवान पुरुषके वचनके कारणसे अर्थका ज्ञान [illegible] है, तो यो आगम प्रमाण है और प्रमाणता आयी है वह [illegible] वक्ता आप्त सर्वज्ञत्व है। वैसी अपौरुषेयता होनेसे प्रमाणता [illegible]न् पुरुषके द्वारा कहे गए हो तो उन वचनोंमें प्रमा[illegible] तो यह चल रहा था अब इस आगमके लक्षणमें जितने [illegible] निराकरण किया गया तो अनेक प्रकारके प्रसंग आ हुवे [illegible]न और वादविवादका प्रसंग छिड़ उठा प्रसंग

करता है [illegible]
निष्कर्ष [illegible]
रहा। तो [illegible]
करते हैं तो [illegible]
इसी कारण [illegible]
नहीं रहती है, [illegible]
गया जाती है। [illegible]
पद आये हैं उन[illegible]
हुए और उनसे [illegible]

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझकर निष्कर्ष यह निकला कि शब्द अर्थका प्रतिपादक तो नहीं है किन्तु जानने वाले ज्ञानी पुरुष इसका प्रतिपादन किया करते हैं। यदि कहो कि पदके अर्थमें उत्पन्न हुआ ज्ञान वाक्यके अर्थका निश्चय करने वाला होता है अर्थात् पदसे ज्ञान तो किया गया उस पदके अर्थमें उत्पन्न हुआ किन्तु उससे जान लिया गया समूचेका अर्थ। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो चक्षुरिन्द्रियके द्वारा रूप ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह रूप ज्ञान गंध ज्ञानका भी निश्चय करने वाले क्यों नहीं हो जाते? यदि कहो कि यह चक्षु इन्द्रिय गंधादिकका साक्षात्कार नहीं करा सकता इस कारण यह दोष न बनेगा कि चक्षु इंद्रियसे उत्पन्न जो रूपादिक ज्ञान है वे गंधका निश्चय करने वाले क्यों नहीं होते? यह दोष नहीं आता। तो उत्तरमें पूछते हैं कि फिर तो पदके द्वारा उत्पन्न हुए पदके अर्थका अध्यवसायी निश्चय करने वाला पदको कैसे कह सकते हैं? जैसे चक्षु इन्द्रिय गंधके ज्ञानमें समर्थ नहीं, इसी प्रकार पद भी वाक्यके अर्थका सम्बन्ध निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तो इस तरह जब एक पद अन्य पदोंका प्रतिपादन नहीं करता तो अन्विताभिधान नहीं बन सकता याने केवल पदान्तर पदोंसे सहित अपने अर्थका प्रतिपादन पद करता है, यह सिद्धान्त सही नहीं बैठता।

अभिहितान्वयरूप वाक्यार्थपर विचार अब भट्ट मतका अनुयायी शंकाकार कह रहा है कि अभिहितान्वय वाक्यका अर्थ है अर्थात् पदोंके द्वारा जो पदार्थ कहे गये हैं उनका तो नाम है अभिहित, मायने कहा गया वह कहा गया अर्थ अन्वयरूपमें जो लगता है बस उन्हीका नाम वाक्यका अर्थ है। उत्तरमें कहते हैं कि अभिहितान्वय में बात यह कही कि अभिहितोंसे अन्वय किया जाता है, सम्बन्ध बनाया जाता है। जैसे किसी वाक्यमें ५ पद हैं तो उन ५ पदोंके अर्थ हुए अब उन अर्थोंका परस्पर सम्बंध मिलाना उसके मायने हैं अभिहितान्वय। इसके उत्तरमें पूछा जा रहा है कि इन पदोंके द्वारा जो अर्थ कहा गया है वह शब्दान्तरसे जोड़ा जाता है या बुद्धिसे जोड़ा जाता है? इसमें दो विकल्प ये किए गए कि उन अभिहित अर्थोंका जो सम्बन्ध बनाया गया है वह किसी अन्य शब्दसे बनाया गया है या अपनी बुद्धिसे बनाया गया है। इनमें पहिला पक्ष तो युक्त नहीं है कि पदोंके द्वारा कहा गया अर्थ शब्दान्तरसे अन्वित होता है क्योंकि अन्य शब्दमें इन समस्त पदोंके अर्थके विषयका ऐसा सम्बन्ध नहीं है कि वह अभिहित पदार्थोंके अन्वयका कारण बन सके। एक पदान्तरसे समस्त पदोंके अर्थका ज्ञान होने लगे तो सम्बन्ध प्रतिपत्ति कहा जाय। और न तो किसी पदान्तरसे पदोंका ज्ञान हो सकता, फिर विषय ही नहीं। याने जिस किसी वाक्यमें ५ पद हैं—अब ५ पदोंके अर्थका सम्बन्ध मिलानेके लिए कोई अन्य शब्द बोला तो अन्य शब्दका उसमें क्या रखना। वाक्यमें जितने पद हैं उतने ही पदोंका वाक्यार्थ बनेगा। शब्दान्तरका विषय नहीं है कि उस वाक्यमें पदोंके द्वारा कहे गये अर्थका अन्वय बना सके। यदि कहो कि उन अभिहितोंका अन्वय पदोंसे होता है तो इसके मायने यह हुआ कि बुद्धि ही वाक्य है, क्योंकि बुद्धिसे ही वाक्यार्थकी प्रतिपत्ति हुई। पदोंने वाक्यार्थ नहीं बताया और वाक्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के लक्षणमें बुद्धिका सम्बन्ध अधिक है बुद्धि ही वाक्य कहलाये यह बात तो भली है क्योंकि जितने पदोंसे उसका भाव समझमें आया उतने पदोंका नाम एक वाक्य कहलाता है। तो समझके अनुसार ही तो वाक्यकी सीमा बनी। तो ठीक है, पर पद ही तो वाक्यार्थ न बनेगा।

परम्परया पदोंसे वाक्यार्थविगम माननेमें दोष निरूपण—अब शंकाकार कहता है जिसका कि यह रुख रहा कि पद वाक्यार्थ कहा करते हैं। शंकाकार कहता है कि अपेक्षा की बुद्धि रखकर परस्पर सम्बन्धित पदोंके अर्थसे वाक्यके अर्थका ज्ञान होता है। हुआ तो पदोंके अर्थसे वाक्यके अर्थका ज्ञान। परम्परासे उन के पदोंमें ना सम्बन्ध है इस कारण परम्परया पदोंसे वाक्यार्थकी प्रतिपत्ति हुई तब पदोंसे भिन्न कोई वाक्य न रहा। पदोंका समुदाय ही वाक्य रहा तो उत्तरमें पूछते हैं कि इस प्रकार तो प्रकृति आदिकसे भिन्न कोई पद ही न रहेगा। प्रकृति कहते हैं प्रत्ययविहीन शब्दको। जैसे रामने। यह तो हुआ शब्द और "राम" यह हुआ प्रकृति याने जो मौलिक शब्द है, जिसमें प्रत्यय जोड़कर पद बना देते हैं उन पदोंसे विभक्ति हटा दी जाय तो केवल प्रकृति कहलाती है। प्रकृतिमें प्रत्यय मिलता है तब उसका नाम पद कहलाता है। तब प्रकृतिसे भिन्न पद भी कुछ न रहा। क्योंकि पदसे अर्थ जाना जायगा पर उसमें मूल तो प्रकृति काम कर रही है। जो मौलिक शब्द है प्रकृतिका अर्थ यहां शब्द नहीं किन्तु प्रत्यय लगनेसे पहिले शब्दकी जो सकल होती है साधारणतया उसका नाम है प्रकृति। तो पदार्थोंसे वाक्यार्थ जाना गया इससे परम्परया पदको कारण मानकर पदोंसे वाक्यार्थ समझना और पदसे भिन्न वाक्य कुछ नहीं, यों मानना है तब फिर प्रकृतिसे भिन्न पद भी कुछ नहीं है क्योंकि सम्बन्धित प्रकृतियोंके कहनेपर अथवा कही हुई प्रकृतियोंके सम्बन्ध बनानेमें पदार्थकी प्रतिपत्ति हो जाया करती है तब फिर प्रकृति ही पद कहलायी। तो जैसे प्रकृतिका नाम पद नहीं है प्रकृति एक आधारभूत मौलिक शब्द है और प्रत्यय मिलाकर उसका पद बनता है तो इसी प्रकार पदसे वाक्यार्थ नहीं जाना गया। पद अर्थसे वाक्यका अर्थ नहीं जाना गया।

पदकी प्रयोगार्हतासे वाक्यकी अर्थाधिगमार्हताकी प्रसिद्धि—शंकाकार कहता है कि पद ही लोकमें और शास्त्रोंमें अर्थकी प्रतिपत्तिके लिये प्रयोगके योग्य हैं। वे प्रकृति या केवल प्रत्यय अर्थकी प्रतिपत्तिमें समर्थ नहीं है और अर्थज्ञानके लिये केवल प्रकृति या प्रत्ययका प्रयोग किया जाता है। प्रकृति तो अभिधान प्रत्यय पृथक् करके फिर बुद्धिकी निष्पत्तिके लिए जिस किसी प्रकार प्रकृतिका कथन हुआ करता है। जैसे पूछा कि गौ इसमें क्या शब्द है? पद संज्ञक शब्द एक क्या है? तो उत्तर दिया गया कि ग औ विसर्ग ये शब्द हैं गौ में, तो जैसे वर्ण अनश है और केवल कल्पनामात्रसे भेद है अथवा इसी प्रकार गौ यह पद भी अनश है और कल्पना-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मात्रसे उनमें भेद है और ऐसा ये निरंश पद अपने अर्थके ज्ञानके निमित्त बताये जाते हैं। निश्चित किए जाते हैं। तो इससे यह मालूम हुआ कि पद ही प्रयोगके योग्य होते हैं केवल प्रकृति या केवल प्रत्यय अर्थ ज्ञानके लिए समर्थ नहीं हैं। जैसे कोई भी वाक्य आप बोलें कुम्हारने मिट्टीका घड़ा बनाया, यह एक ही वाक्य बोला। अब इसमें प्रत्यय न बोलें कुम्हार, मिट्टी, घड़ा आदि बोला तो इसका क्या अर्थ निकला? जब तक उसमें प्रत्यय न जोड़ा जाय, विभक्ति न लगाई जाय तब तक इस का कोई अर्थ नहीं बन सकता। तो विभक्ति सहितका नाम है प्रत्यय। और यदि कहा गया—'ने, से, को' तो इसका भी अर्थ लोग क्या समझेंगे? तो अर्थज्ञान करने के लिये पद प्रयोगके योग्य होते हैं, न केवल प्रकृति और न केवल प्रत्यय प्रयोगके योग्य है। और वे वर्ण निरंश हैं। इसी प्रकार पद भी निरंश है। लेकिन जैसे वर्णों में मात्रा भेदकी कल्पना की गई है ह्रस्व है। दीर्घ है। उदात्त है आदिक, इसी प्रकार पदमें भी वाक्यार्थके ज्ञान करानेके लिये उसमें भी भेदकी कल्पना की जाती है। यों शंकाकार कह रहा है उत्तरमें कहते हैं - तो ठीक है। इसमें तो वाक्यकी ही तात्त्विकता प्रसिद्ध हुई याने अर्थज्ञान वाक्यसे हुआ केवल पदसे नहीं हुआ। जैसे तुम कह रहे हो कि केवल प्रकृतिसे अर्थज्ञान नहीं होता केवल प्रत्ययसे अर्थज्ञान नहीं होता तो यह भी कहो कि केवल पदसे अर्थका ज्ञान नहीं होता। वक्ता क्या कहना चाहता है उस अभिप्रायका बोध केवल पदोंसे नहीं हो सकता तब तात्त्विक चीज क्या रही? वाक्य। वाक्यसे ही व्यवहार है। वाक्यसे ही समझ है। तो तात्त्विकता वाक्यमें रही। और उस वाक्यकी उत्पत्तिके लिए वाक्यसे पृथक कर करके पदोंका उपदेश किया गया है। वैसे तो लोकमें और शास्त्रमें अर्थका ज्ञान करानेके लिए वाक्य ही प्रयोगके योग्य हैं जैसे शंकाकारने कहा था कुम्हारने घड़ेको मिट्टीसे बनाया ऐसा पूरा पूरा पद बोला जायगा तब अर्थ आयगा। केवल कुम्हार, मिट्टी, घड़ा, इससे अर्थ न बनेगा "नेसेको आदिकसे" न बचा तो कुछ और स्पष्ट कर रहे हैं कि पदोंसे भी अर्थ ज्ञान नहीं बनता। कोई कहे कुम्हारने - बस क्या अर्थ समझा? अथवा कोई कहे घड़ेको। तो उससे भी क्या अर्थ समझेंगे? अर्थ तो समझा जायगा वाक्यसे। तो वाक्य ही लोकमें और शास्त्रमें अर्थका ज्ञान करानेके लिए प्रयोगके योग्य हैं। कहा भी है अन्य जनोंने कि पद दो प्रकारके होते हैं—एक सुबंत और एक तिङंत। मायने एक तो क्रिया सम्बन्धी और एक शब्द सम्बन्धी। इस तरहसे पदका भेद भाव किया गया है कल्पनायें करके। अथवा पद ४ तरहके होते हैं—नाम आख्यात, निपात और कर्म प्रवचनीय। अथवा ५ तरहके होते हैं इन्हीं ४ मेंसे एक उपसर्ग और जोड़ दीजिए, उपसर्ग पद होता है।

अभिहितान्वयवादके विवादका निष्कर्ष—भैया! पदोंको वाक्योंसे पृथक करके यह बताया गया है जैसे प्रकृति प्रत्यय अर्थाधिगममें असमर्थ है। चीज तो है असलमें पद। अब उन पदोंमेंसे विभक्तिको पृथक करके बताया जायगा तो उसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकृति जानी जायगी । ठीक है. पर उससे यही तो सिद्ध हुआ कि प्रकृति आदिक अवयवोंसे कथञ्चित् भिन्न और कथञ्चित् अभिन्न पद हुआ करता है । कैसे ? पद प्रकृति नही होती । पद कहते हैं प्रत्यय मिली हुई प्रकृतिको । प्रकृति कहते हैं प्रत्ययरहित शब्द को । तब पदका नाम प्रकृति नही है । पद है सो प्रकृति नही है । पदका स्वरूप न्यारा है प्रकृतिका स्वरूप न्यारा है । इस तरहसे जब पद और प्रकृति परस्परमें भिन्न भिन्न हुए तो कथञ्चित् भिन्न कहलाये पर समुदाय रूप ही तो हैं पदमें । प्रकृति अलग हो, प्रत्यय अलग हो सो नही । वह समुदित चीज है अतएव प्रकृति आदिक अवयवोंसे पद अभिन्न हैं इस तरह समझना चाहिये, पर पद सर्वथा अनंश हो वर्णोंकी तरह सो बात नही । जैसे निरंश कोई वर्ण नही, निरंश वर्णोंका कोई ग्राहक प्रमाण नही । तो क्या अर्थ हुआ कि पद होते हैं और उनसे पदोंका अर्थ मात्र जाना जाता है वाक्यार्थ पदोंसे नही जाना गया । वाक्यका अर्थ पूरे वाक्यसे ही समझा जायगा । इसी तरह वाक्य भी पदोंमें कथञ्चित् भिन्न है और कथञ्चित् अभिन्न है । अभिन्न तो यों है कि पद ही वाक्य न कहलाया । इसलिए तो भिन्न है, अभिन्न यों है कि समुदित पदोंका नाम ही वाक्य कहलाता है पदोंसे भिन्न वाक्य नही है और वे वाक्य दो प्रकारके होते द्रव्य वाक्य भाव वाक्य । जो वचनात्मक हैं वे तो द्रव्यवाक्य हैं और जो बोधात्मक हैं वह भाववाक्य है । इसी प्रकार यह सब कुछ जो वाक्यका लक्षण किया गया था उस से पृथक नही है । वाक्यका लक्षण है कि परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय वाक्य कहलाता है । एक कोई भाव समझनेमें जितने पदोंकी अपेक्षा चाहिए उतने पदोंकी तो अपेक्षा होती है और उससे अर्थ ध्वनित होगया तो अन्य किसी भी पदकी कुछ आकांक्षा नहीं रहती है । वाक्यका लक्षण माननेके लिये उसका यह लक्षण निर्दोष है कि परस्परापेक्ष पदोंका अनपेक्ष समुदाय वाक्य कहलाता है ।

आगम प्रमाणके लक्षणसे सम्बन्धित विरोधोंकी समीक्षा— इस अन्तिम सूत्रमें आगमका लक्षण बताने वाले सूत्रमें जो यह कहा गया कि आप्तके वचन आदिकके कारणसे जो अर्थज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं । आप्त है कोई सर्वज्ञ है, क्योंकि जब रागादिक अज्ञान औपाधिक हैं और कहीं कम कहीं और कम इस तरह पाये जाते हैं उससे सिद्ध है कि कहीं बिल्कुल भी नहीं है । जब स्वभावभूत ज्ञान कहीं अधिक कहीं और अधिक विकसित पाया जाता है तो यह भी ज्ञात होता है कि किसी आत्मा में पूर्ण विकसित ज्ञान होता है । जिसमें परिपूर्ण ज्ञान विकसित हुआ, रागादिक भावों का लेशमात्र भी न रहा हो उस आत्माको आप्त कहते हैं । इसके बाद वचनसिद्धि की है । वचन पौरुषेय होते हैं अपौरुषेय नही । फिर वचन वाचक होते हैं और अर्थ वाच्य हुआ करता है । इस सम्बन्धमें अभी बहुत कुछ वर्णन हुआ है । इसके विरोधमें जो यह कहा था कि शब्द वाचक नही हुआ करते किन्तु स्फोट वाचक होते हैं अथवा जो कहते थे कि पदार्थ वाच्य नही होता, किन्तु अन्यापोह वाच्य होता है उन सब पर ही विचार किया गया है । अब यहां अर्थज्ञान किस आप्त पुरुषकी बात चल रही है, कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थज्ञान किस प्रकारका होता है ? तो निष्कर्ष यह निकला कि अर्थज्ञान वाक्यसे होगा वाक्यका जो अर्थ है उसका ज्ञान होना इससे व्यवहार लोकमें भी चलता है और शास्त्र में भी प्रतीति होती है और प्रवृत्ति निवृत्ति भी वाक्यार्थसे हुआ करती है तो कोई पुरुष कहता है कि वाक्यका अर्थ है अन्वित भिधान, जो एक पदान्तर पदोंके अर्थसे अन्वित आने अर्थको बता देता है, यही वाक्यार्थ है। तो यह पक्ष भी सबल नहीं रहा, कोई कहते हैं कि अनिहितान्वय यानी पदोंके द्वारा जो अर्थ कहे गए हैं उनका परस्परमें सम्बन्ध जोड़ देना। फिर विचार करनेपर यह भी कुछ यथार्थ न रहा। तो बात हुई क्या कि पदार्थ ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे जो अर्थोपयोग होता है पदोंका अर्थ समझकर उसकी धारणा करके अन्य पदोंका अर्थ जानकर पूर्व पदोंके अवधारित अर्थसे संस्कृत पुरुष अन्तिम पदका अर्थ समझते ही सब भाव समझ जाता है और इससे भी वाक्यार्थका परिज्ञान होता है। यों आगमके लक्षणमें कहे गए एक-एक शब्दोंपर विशेष विचार करके सिद्ध कर दिया गया कि आप्तवचनादिकके कारण उत्पन्न हुए अर्थज्ञानको आगम कहते हैं।

तृतीय परिच्छेदमें परोक्षज्ञानोंका विवरण—इस प्रकरणमें इस परिच्छेद में परोक्षज्ञानका स्वरूप कहा गया है। परोक्षज्ञान ५ प्रकारके होते हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। स्मृति तो संस्कारके जगनेसे किसी पदार्थमें वह है इस प्रकार वाला जो ज्ञान है वह स्मरणज्ञान है। और प्रत्यक्ष व स्मरणके कारण से प्रत्यक्ष और स्मरणके बीच एक जुड़ने वाला ज्ञान प्रत्यभिज्ञान कहलाता है। जैसे यह वही है यह उसके समान है, यह उससे बड़ा है आदिक। तर्क किसी सम्बन्धके बारेमें ऊहापोह करना सो तर्कज्ञान है। तर्कज्ञानका सम्बन्ध और उपयोगिता अनुमान ज्ञानके लिए होती है। तर्कसे साध्य साधनका अविनाभाव जाना जाता है। फिर कहा है अनुमान ज्ञानको। साधन साधनको देखकर साध्यका ज्ञान करना अनुमान प्रमाण है। इतने विस्तृत विवेचनके बाद फिर कहा आगम ज्ञान। शास्त्रसे जो अर्थज्ञान किया जाता है अर्थात् गुणवन्त पुरुषके वचनोंसे जो अर्थज्ञान होता है वह आगम है। इस प्रकार पांचों ही ज्ञान अविशद हैं। प्रत्यक्षकी भांति सांव्यवहारिक प्रत्यक्षकी भांति भी स्पष्ट नहीं हैं। अविशद होनेके कारण यह ज्ञान परोक्षज्ञान कहलाता है। इस ग्रन्थमें सर्वप्रथम प्रमाणका वर्णन किया। प्रमाणका लक्षण करना यों आवश्यक समझा कि वस्तुस्वरूपकी परीक्षा प्रमाण बिना नहीं होती इसलिए वस्तुस्वरूपकी सच्चाई और झूठेके परिज्ञानके लिए प्रमाणका लक्षण बताना अति आवश्यक है। तो वह प्रमाण है ज्ञानरूप। अन्य अचेतन पदार्थोंके समुदायरूप नहीं। उस ज्ञानरूप प्रमाणके दो भेद किए गये -प्रत्यक्ष और परोक्ष। ज्ञानरूप प्रमाणके साधन भी बताये गए। किस तरह ज्ञान प्रमाण बनता है। उसके अन्तरंग बहिरंग साधन क्या हैं ? ऐसे अवधारित ज्ञान के दो भेद किए प्रत्यक्ष और परोक्ष। दार्शनिक विधिसे प्रत्यक्षके मूल दो भेद हैं-- सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। जो केवल व्यवहारमें ही विशद कह-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है, वस्तुत: तो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे [illegible] है। इसलिए व्यवहारविशद ज्ञानको सांव्यवहारिक [illegible] कहते हैं [illegible] मनके निमित्त बिना केवल आत्मशक्तिसे जो ज्ञान होता [illegible] पारमार्थिक [illegible] कहते हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्षके दो भेद हैं—विकल पारमार्थिक [illegible] सकल पारमार्थिक। जो एक देश कुछ पदार्थोंको विशद जानते हैं किन्तु इन्द्रिय मनके निमित्त बिना जानते हैं वे तो विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहलाते हैं जैसे अवधिज्ञान और सम्पूर्ण रूपसे सर्वदेश, सर्व काल, सर्व अवयवोंमें जो विशद ज्ञान है उसका नाम है सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष। तो यों प्रत्यक्षका वर्णन करके इस परिच्छेदमें परोक्ष प्रमाणका वर्णन किया है। विद्वान लोगोंकी बुद्धिने प्रामाण्य उसीका माना है जिसमें सम्वाद निश्चित होता है, सत्यता निश्चित होती है, विवाद नही रहता है यह है प्रमाणका मूल लक्षण। इसलिए चाहे प्रत्यक्ष ज्ञान हो चाहे परोक्ष ज्ञान हो, सबमें यह लक्षण जाना जागया। जिसमें सम्वाद हो उसे प्रमाण कहते हैं। वैसे प्रमाणकी संख्या नाना प्रकारसे लोगोंने कल्पनायें की है लेकिन विचार विमर्शके बाद जो अभी प्रमाणकी संख्या बताया है वह युक्तियुक्त उतरती है। प्रत्यक्ष परोक्षके प्रकारोंमें प्रमाणोंकी इस प्रकारकी संख्या यथार्थ होती है यों परोक्ष प्रमाणका वर्णन करने वाला यह तृतीय परिच्छेद समाप्त होता है।

卐

Version 1